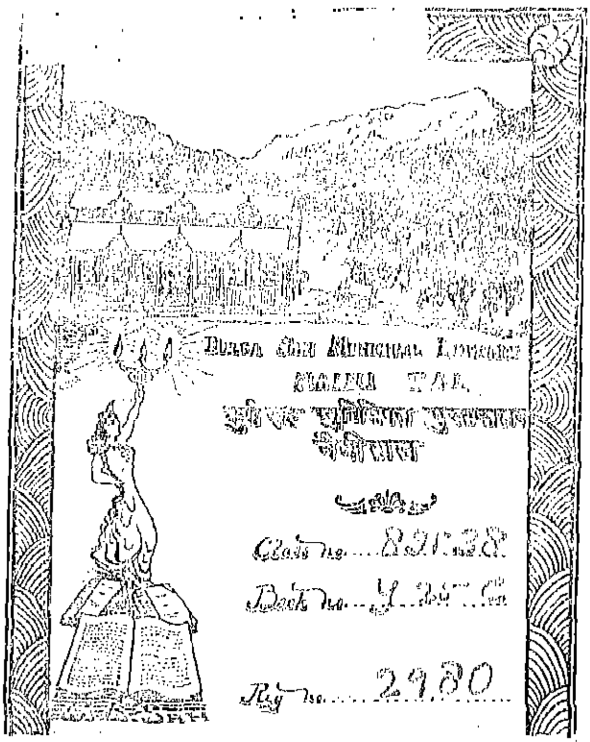


चित्र का शीर्षक

इन कहानियों के विषय में:—

इन कहानियों में यशपाल ने प्रत्येक समस्या चोरी, वेश्यावृत्ति, धर्म-विश्वास, सौन्दर्य, यौन उच्छृंखलता और साम्प्रदायिकता आदि पर समाज के ऊँचे साधन-सम्पन्न और निकृष्ट माने जाने वाले साधनहीन वर्गों के तुलनात्मक दृष्टिकोणों को रखा है। समाज की मान्यताओं और नैतिकता का ऐसा तटस्थ विश्लेषण असाधारण वस्तु है। अन्तिम कहानी में जो चुटीलापन है उसकी समता शायद ही किसी दूसरे लेखक की रचना में मिल सकेगा।

आज हिन्दी से दूसरी भाषाओं में अनुवादित होने वाले आधुनिक साहित्य में यशपाल की कहानियों और उपन्यासों का स्थान सबसे प्रथम है। यह कहानियाँ यशपाल की सबसे नयी अथवा परिपक्व कहानियाँ समझी जानी चाहिये। इस संग्रह में बहुत ही छोटी और लम्बी दोनों प्रकार की कहानियाँ पूर्ण सफल रूप में प्रस्तुत हैं।

इस संग्रह की सभी कहानियों को लखनऊ लेखक संघ की गोष्ठियों में पढ़ा गया है और इन्हें कहानी के आधुनिक ढंग के उत्कृष्ट रूप में स्वीकार किया गया है।

प्रकाशक

विप्लव प्रकाशन—२७

चित्र का शीर्षक

छोटी और बड़ी तेरह समस्यामूलक कहानियां

यशपाल

(प्रथम संस्करण)

विप्लव-कार्यालय, लखनऊ

जून १९५२] [मूल्य २ रुपया]

प्रकाशक—
विप्लव कार्यालय,
लखनऊ.

मुद्रक—
साथी प्रेस
लखनऊ.

समर्पण :—

कहानी को जीवन की समस्याओं के सुलझाव
का साधन बनाने वाले आदिम कथाकारों को
मैं अपनी यह नयी छोटी-बड़ी तेरह कहानियाँ
समर्पित करता हूँ।

यशपाल

क्रम

भूमिका

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा द्वारा प्रकाशित एक कहानी संग्रह की भूमिका मे कहानी के प्रयोजन के सम्बन्ध में गुरुदेव रवीन्द्र के एक उद्धरण के आधार पर मन्तव्य प्रकट किया गया है कि कहानी का उद्देश्य केवल कहानी है ; कहानी लेखक कहानी लिखना या सुनाना चाहता है इसीलिये कहानी लिखता है। कहानी लिखने या सुनाने से या कहानी सुनने या पढ़ने से जो संतोष होता है, वही कहानी का आद्योपान्त उद्देश्य और लक्ष्य है, अन्य कुछ नहीं।

'बेटी को सुना कर बहु को सीख देने' के ढंग से कहानी के सम्बन्ध में गुरुदेव के यह विचार निश्चय ही हिन्दी जगत के उन नौसिखिये प्रगतिवादी लेखकों को सुनाये गये हैं जो कहानी या साहित्य को सामाजिक उद्बोधन और समाज की आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक समस्याओं के हल का साधन बनाना चाहते हैं। गुरुदेव के समान मानवता से आत्मीयता स्थापित कर सकने वाले कलाकार की गवाही से कहानी का प्रयोजन कला के लिये कला या कहानी से रस लेना ही बता देने के पश्चात नौसिखिये प्रगतिवादी लेखक की बात का शायद कुछ मूल्य रह ही नहीं जाता। परन्तु यह बात भी भुला देने योग्य नहीं कि गुरुदेव के वचन सभी लोगों के मुंह में जा कर एक सा ही अर्थ नहीं रख सकते। उदाहरणतः गीता का उपदेश देते समय कृष्ण के यह शब्द "सर्व धर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" (धर्म-अधर्म और कर्तव्य-अकर्तव्य की उलझन में न पड़ कर तू बस मेरी बात मान) सभी के मुख से न तो उतनी विश्वासोत्पादक हो सकती है न प्रभावशाली !

अपने-अपने मानसिक विकास के क्षेत्र और सांस्कृतिक स्तर के अनुसार व्यक्ति के स्वान्तः सुख और संतोष का रूप बदलता रहता है। एक सुसंस्कृत व्यक्ति आत्मतोष की भावना से ही

जनकल्याण के लिये प्राण दे देता है और दूसरा पड़ोसी के घर सेंध लगा कर संतोष पाना चाहता है। क्या ऐसे दोनों व्यक्तियों के आत्मतोष की भावना पर एक समान भरोसा किया जा सकता है? ऐसे ही कहानी लिखने से भी सभी लेखक एक ही प्रकार के आत्मतोष या स्वान्तः सुख की चेष्टा नहीं करते! उदाहरण के लिये गुरुदेव रवीन्द्र की कविताओं से एक पंजाबी लोकगीत 'तूकवा वजदाईना' को तुलना करना पर्याप्त होगा। निश्चय ही 'तूकवा वजदाईना' के गायक ने अपने गीत में एक स्वान्तः सुख प्राप्त किया होगा जैसे कि गुरुदेव अपनी कविताओं या गीतों में करते थे। परन्तु 'तूकवा वजदाईना' की स्वान्तः सुख की अनुभूति समाज द्वारा स्वीकृत नैतिकता के लिये इतनी असह्य थी कि सरकारी आज्ञा से उसका सार्वजनिक रूप से गाया जाना निषिद्ध ठहराना आवश्यक समझा गया और गुरुदेव के गीत को राष्ट्रीय-गीत का स्थान देने से जनता को संतोष हुआ।

महापुरुषों के वचनों के लिये प्रायः ही टीका और भाष्य की आवश्यकता होती है इसलिये गुरुदेव की बात को समझने का प्रयत्न करना धृष्टता न समझी जानी चाहिये। हमारे सामने दो मौलिक प्रश्न हैं। एक, कहानी से रस क्यों मिलता है? दूसरा, कहानीकार को कहानी सुनाने की इच्छा ही क्यों होती है? शायद यह उत्तर विवादास्पद न समझा जायगा कि कहानी से रस मिलने का कारण श्रोता या पाठक का कहानी के पात्र के जीवन और व्यवहार के प्रति कौतूहल और उत्सुकता है। पाठक या तो कहानी के पात्र के प्रति सहानुभूति से या पात्र के अनुचित कार्य के विरोध को अनुभव कर कहानी में रस पाता है। पाठक के कौतूहल, उत्सुकता सहानुभूति और विरोध का आधार कहानी द्वारा कहानी की समस्या से आत्मीयता अनुभव करना ही है। कहानीकार की कहानी सुनाने की इच्छा का स्रोत पाठकों या श्रोताओं से सामाजिक सम्बन्ध के आवश्यकतानुकूल काल्पनिक चित्रों द्वारा अनुभूति के और विचारों के आदान-प्रदान का अवसर पाना ही है। इस सामाजिक चित्र से कथाकार और श्रोता दोनों की ही अनुभूतिगम्य आत्मीयता होना आवश्यक है। यदि कहानी से रस मिलने और कहानी कहने की इच्छा के सम्बन्ध में उपरोक्त मन्तव्य को अंशतः

भी स्वीकार किया जा सकता है तो कहानी मूलतः एक सामाजिक वस्तु हो जाती है और उसे केवल व्यक्तिगत संतोष का साधन कह कर छोड़ देना कहानी के मूलतत्व से इनकार कर देना होगा।

कहानी को एक सामाजिक सूत्र मान कर हम कहानी के प्रयोजन और कथाकार के सामाजिक उत्तरदायित्व की उपेक्षा किस प्रकार कर सकते हैं? इस सामाजिक सूत्र के दोनों छोरों कथाकार और श्रोता के अस्तित्व को भुला कर कहानी को केवल कथाकार के आत्मसंतोष का ही साधन कैसे मान लिया जा सकता है? हाँ, यदि कहानी के रूप में सामाजिक समस्या के विवेचन और चिंता को हम बोझ के रूप में अनुभव नहीं करते तो उसे हम कहानी कला की सफलता अवश्य समझ सकते हैं। कहानी को निश्चय ही अरुचिकर और बोझल नहीं होना चाहिये परन्तु कहानी का उद्देश्य स्वयं कहानी ही बता देना कहानी को निष्प्रयोजन और निरूद्देश्य बना देना होगा। हमें मान लेना होगा कि हम कहानी से श्रोता या पाठक पर कोई भी प्रभाव पड़ने की आशा नहीं करते।

यदि कहानी की सफलता की कसौटी पाठक या श्रोता पर पड़ने वाले प्रभाव को माना जाय तो कहानी से पड़ने वाले प्रभाव के प्रति सतर्क रहना भी सामाजिक कर्तव्य हो जाता है। कहानी निष्फल और प्रभाव शून्य न कभी हुई है न हो ही सकती है। कहानी से पड़ने वाला प्रभाव ही उसका प्रयोजन और उद्देश्य है। हम इस प्रयोजन या उद्देश्य के प्रति सचेत हों या न हों।

कहानी द्वारा परम्परागत मान्यताओं के समर्थन को कला का स्वान्तः सुख बता देना और कला के माध्यम से नवीन विचारों का परिचय देने के प्रयत्न को कला का दुष्प्रयोग बता देना, कला को एक विशेष विचारधारा की चेरी बनाये रखने का ही प्रयत्न है! जनवाद के इस युग में कला पर एकाधिकार की यह प्रवृत्ति कैसे सहन की जा सकती है?

यशपाल

एक

चित्र का शीर्षक

जयराज अच्छा जाना-माना चित्रकार था। प्रकृति और जीवन के यथार्थ से अपने चित्रों को सजीव बना सकने के लिये वह उस वर्ष अप्रैल के आरम्भ मे ही रानीखेत जा बैठा था। उन दिनों पहाड़ों में वातावरण खूब साफ और आकाश नीला रहता है। रानीखेत से 'त्रिशूल', 'पंचचूली' और 'चौखम्भा' की बरफानी चोटियां नीले आकाश के नीचे ऐसी दिखाई पड़ती थीं मानों गहरा नीला समुद्र आकाश में चढ़ कर छत की तरह स्थिर हो गया हो और उसका श्वेत फेन समुन्द्र के गर्भ से मोतियों और मणियों को समेट कर ढेर का ढेर नीचे पहाड़ों पर आ गिरा हो।

जयराज ने इन दृश्यों के कुछ चित्र बनाये परन्तु मन न भरा। मनुष्य के संसर्ग से हीन यह चित्र बना कर उसे ऐसा ही अनुभव हो रहा था जैसे निर्जन बीयाबान में गाये गये राग का चित्र बना दिया हो! यह चित्र इसे मनुष्य की चाह और अनुभव के स्पन्दन से शून्य जान पड़ते थे। उसने कुछ चित्र पहाड़ों पर पसलियों की तरह फैले हुए खेतों में काम करते पहाड़ी किसान स्त्री-पुरुषों के बनाये। इन चित्रों से भी सन्तोष न हुआ। कला की इस असफलता से उसे अपने हृदय में एक हाय! हाय! का सा शोर अनुभव हो रहा था। वह अपने स्वप्न और चाह की बात प्रकट नहीं कर पा रहा था।

जयराज अपने मन की तड़प को प्रकट कर सकने के लिये व्याकुल था। वह बरामदे में बैठा मुट्ठी पर ठोड़ी टिकाये दूर-दूर

तक फैली हरी घाटियों के उतारों चढ़ावों पर छलती सुनहरी धूप में और गहराइयों में कुंडलियां खाती, चांदी की रेखा जैसी नदियों और दूध के फेन जैसी चोटियों पर नजर दौड़ा रहा था। कोई लक्ष्य न पा कर उसकी दृष्टि अखण्ड विस्तार पर तैर रही थी। उस समय उसकी कल्पना उसकी स्थिर आंखों के छिद्रों से सामने की चढ़ाई पर एक सुन्दर, सुघड़ युवती को देखने लगी। जो निरुद्देश्य, केवल उसकी दृष्टि का लक्ष्य बन सकने के लिये ही, उस विस्तार में जहां-तहां, सभी जगह दिखाई दे रही थी।

जयराज ने एक अस्पष्ट सा आश्वासन अनुभव किया। इस अनुभूति को पकड़ पाने के लिये उसने अपनी निरुद्देश्य दृष्टि उस विस्तार से हटा, दोनों बाहों को सीने पर बांधते हुए एक गहरा निश्वास लिया। उसे कुछ और ऐसा हो जान पड़ा जैसे अपार पारावार में बहता निराश व्यक्ति अपनी रक्षा के लिये आने वाले की पुकार सुन ले! उसने अपने मन में स्वीकार किया, यही तो वह चाहता है:—कल्पना से सौन्दर्य की सृष्टि कर सकने के लिये उसे स्वयं भी जीवन में सौन्दर्य का सन्तोष मिलना चाहिए; बिना फूलों के मधु मक्खी मधु कहां से लाये?

ऐसी ही मानसिक अवस्था में जयराज को एक पत्र मिला। यह पत्र इलाहाबाद से उसके मित्र एडवोकेट सोमनाथ ने लिखा था। सोमनाथ ने जयराज का परिचय उसकी कला के प्रति अनुराग और आदर के कारण प्राप्त किया था। कुछ अपनापन भी हो गया था। सोम ने अपने उत्कृष्ट कलाकार मित्र के बहुमूल्य समय का कुछ भाग लेने की धृष्टता के लिए क्षमा मांग कर अपनी पत्नि के बारे में लिखा था:—"....इस वर्ष नीला का स्वास्थ्य कुछ शिथिल होने के कारण उसे दो मास पहाड़ में रखना चाहता हूँ। इलाहाबाद की कड़ी गर्मी में वह बहुत असुविधा अनुभव कर रही है। यदि तुम अपने पड़ोस में ही किसी सस्ते छोटे, परन्तु अच्छे मकान का प्रबन्ध कर सको तो उसे वहां पहुंचा दूं। तुम ने सम्भवतः अलग पूरा बंगला लिया होगा। यदि उस मकान में जगह हो और इससे तुम्हारे काम में विघ्न पड़ने की आशंका न हो तो हम दो-तीन कमरे सबलैट कर लेंगे। नीला के लिये दूसरा नौकर रख लिया जायगा......" आदि आदि।

दो वर्ष पूर्व जयराज इलाहाबाद गया था। उस समय सोम ने उसके सम्मान में एक चाय पार्टी दी थी। उस अवसर पर जयराज ने नीता को देखा भी था। तब सोम और नीता का विवाह हुए कुछ ही मास बीते थे। पार्टी में आये अनेक स्त्री-पुरुषों के भाड़-भड़क्के में संक्षिप्त परिचय ही हो पाया था। जयराज ने स्मृति की उंगुली से अपने मस्तिष्क को कुरेदा। उसे केवल इतना याद आया कि नीता दुबली-पतली छरहरे बदन, गोरी, हंस मुख नवयुवती थी; आंखों में बुद्धि की चमक! जयराज ने पत्र को तिपाई पर एक ओर दबा दिया और फिर सामने घाटी के विस्तार को निरुद्देश्य देखता हुआ सोचने लगा, क्या उत्तर दे?

जयराज की निरुद्देश्य दृष्टि तो घाटी के विस्तार पर तैर रही था परन्तु अपनी कल्पना में वह अनुभव कर रहा था कि उसके समीप ही दूसरी आराम-कुर्सी पर नीता बैठी है। वह भी दूर घाटी में कुछ देख रही है या किसी पुस्तक के पन्नों या अखबार में दृष्टि गड़ाये है। समीप बैठी युवती नारी की यह कल्पना जयराज को, सामने दूध के फेन के समान श्वेत, स्फटिक के समान उज्ज्वल पहाड़ की बरफानी चोटी से कहीं अधिक स्पन्दन उत्पन्न करने वाली जान पड़ी। युवती के केशों और शरीर से आता अस्पष्ट सा सुवास वायु के झोंकों के साथ घाटियों से आती सेवती और सिरीश के फूलों की भीनी गंध से अधिक सन्तोष दे रहा था। वह अपनी कल्पना में देखने लगा :—नीता उसकी आंखों के सामने घाटी की एक पगडन्डी पर चढ़ती जा रही है। कड़े पत्थरों और कंकरों के ऊपर सैन्डल में कसमसी नीता की गुलाबी एड़ियाँ, चढ़ाई में साड़ी को हाथ से सम्भाल लेने के कारण उघड़ती उसकी केले के भीतर के डंठल के रंग की पिन्डलियां, चढ़ाई के श्रम के कारण नीता की सांस चढ़ गई है और प्रत्येक सांस के साथ उसका सीना उभर आने के कारण कमल की प्रस्फुटनोन्मुख कली की तरह अपने आवरण को फाड़ देना चाहता है। वह कल्पना करने लगा, —मैं कैनवस के सामने खड़ा चित्र बना रहा हूँ। नीता एक कमरे से निकल, आहट से मेरे काम में विघ्न न डालने के लिये पंजों के बल मेरे पीछे से होती हुई, दूसरे कमरे में चली जा रही है। वह किसी काम से नौकर को पुकार रही है। उस आवाज से मेरे हृदय का सांय-सांय करता सूनापन सन्तोष से बस गया है…

जयराज झपाटे से कागज़ और कलम ले उत्तर लिखने बैठा परन्तु ठिठक कर सोचने लगा, वह क्या चाहता है ? ··· मित्र की पत्नि नीता से वह क्या चाहेगा ? ··तटस्थता से तर्क कर उसने उत्तर दिया, कुछ भी नहीं ? जैसे सूर्य के प्रकाश में हम सूर्य की किरणों को पकड़ लेने की आवश्यकता नहीं समझते, उन किरणों से स्वयं ही हमारी आवश्यकता पूरी हो जाती है; वैसे ही वह अपने जीवन मे अनुभव होने वाले अंधेरे सुनसान में नारी की उपस्थिती का प्रकाश चाहता है।

जयराज ने पत्र का संक्षिप्त सा उत्तर लिखाः "···भीड़-भाड़ से बचने के लिये अलग पूरा ही बंगला लिया है। बहुत सी जगह खाली पड़ी है। 'सवलीट का कोई सवाल नहीं। पुराना नौकर है ही। यदि नीता जी उस पर देख रेख रखेंगी तो मेरा ही लाभ होगा। जब सुविधा हो, आकर उन्हें छोड़ जाओ। पहुंचने के समय की सूचना देना। मोटर-स्टेशन पर मिल जाऊँगा···"

अपनी आंखों के सामने और इतने समीप एक तरुण सुन्दरी के होने की आशा मे जयराज का मन उत्साह से भर गया। नीता की अस्पष्ट सी याद को जयराज ने कलाकार के आदर्शों की कल्पना से पूरा कर लिया। वह उसे अपने बरामदे में, सामने की घाटी पर, सड़क पर अपने साथ चलती दिखाई देने लगी। जय-राज ने उसे भिन्न-भिन्न रंगों की साड़ियों में, सलवार-कमीज के जोड़े की पंजाबी पोशाक में, मारवाड़ी अंगिया-लहंगे में, फूलों से भरी लताओं के कुंज मे, चीड़ के पेड़ के तले और देवदारों की शाखाओं की छाओं में सब जगह देख लिया। वह उसके सशरीर सामने आ जाने की उग्र प्रतीक्षा मे व्याकुल होने लगा; वैसे ही जैसे अंधेरे से परेशान व्यक्ति सूर्य के प्रकाश की प्रतीक्षा करता है।

लौटती डाक से सोम का उत्तर आयाः—"···तारीख को नीता के लिए गाड़ी में एक जगह रिजर्व हो गयी है। उस दिन हाईकोर्ट मे मेरा होना बहुत आवश्यक है। यहाँ गर्मी अधिक है और बढ़ती ही जा रही है। मैं नीता को और कष्ट नहीं देना चाहता। काठगोदाम तक उसके लिए गाड़ी में जगह सुरक्षित है। उसे बस की भीड़ में न फंसा कर टैक्सी पर जाने के लिये कह दिया है। तुम उसे मोटर-स्टेशन पर मिल जाना। जहां तुम हमें

लोगों के लिये सब कर रहे हो, इतना और सही। हम दोनों कृतज्ञ होंगे............।"

जयराज मित्र की सुरक्षित और सुसंस्कृत पत्नी को परेशानी से बचाने के लिए उत्सुकता से मोटर-स्टेशन पर प्रतीक्षा कर रहा था। काठगोदाम से आने वाली मोटरें पहाड़ों के पीछे से जिस मोड़ से सहसा प्रकट होती थीं, उसी ओर जयराज की आँखें निरन्तर लगी हुई थीं। एक टैक्सी दिखाई दी। जयराज आगे बढ़ गया। गाड़ी रुकी। पिछली सीट पर एक महिला अपने शरीर का बोझ सम्भाल न सकने के कारण कुछ पसरी हुई सी दिखाई दी। चेहरे पर रोग की थकावट का पीलापन और थकावट से फैली हुई निस्तेज आँखों के चारों ओर स्याही के घेरे! जयराज ठिठका। महिला की आँखों में पहचान का भाव और नमस्कार में उसके हाथ उठते देख जयराज को स्वीकार करना पड़ा—

"मैं जयराज हूँ"

महिला ने मुस्कराने का यत्न किया—"मैं नीता हूँ"

महिला की वह मुस्कान ऐसी थी जैसे पीड़ा को दबा कर कर्तव्य पूरा किया गया हो। महिला के साधारणतः दुबले हाथ-पाँव पर लगभग एक शरीर का बोझा आगे बँध जाने के कारण उन्हें मोटर से उतरने में भी कष्ट हो रहा था। बिखरे जाते अपने शरीर को सम्भालने में उन्हें वैसी ही असुविधा हो रही थी जैसे सफ़र में बिस्तर के बन्द टूट जाने पर सम्भालना कठिन हो जाता है। महिला लँगड़ाती हुई कुछ ही कदम चल पायी थीं कि जयराज ने एक डांडी (डोली) को पुकार उन्हें चार आदमियों के कन्धों पर लदवा दिया। सौजन्यता के नाते उसे डांडी के साथ चलना चाहिए था परन्तु उस शिथिल और विरूप आकृति के समीप रहने में जयराज को उबकाई और ग्लानि अनुभव हो रही थी।

जयराज के बंगले पर पहुँच नीता अलग कमरे में पलंग पर लेट गई। उस कमरे से "आह! ऊंह"! की दबी कराहट निरन्तर जयराज के कानों में पहुँच रही थी। दोनों कानों में उँगलियाँ दबा कर उसने कराहट सुनने से बचना चाहा परन्तु उसे अपने शरीर के रोम-रोम से वह कराहट सुनाई दे रही थी। वह नीता

की विरूप आकृति, रोग और बोझ से शिथिल, लँगड़ा-लंगड़ा कर चलते शरीर को अपनी स्मृति के पट से पोंछ डालना चाहता था परन्तु वह बरबस आकर,उसके सामने खड़ा हो जाता। नीता जय-राज को उस मकान के पूरे वातावरण में समा गई अनुभव हो रही थी। जयराज का मन चाह रहा था, बँगले से कहीं दूर भाग जाये।

दूसरे दिन सुबह सूर्य की प्रथम किरणें बरामदे में आ रही थीं। ठन्डी हवा में कुछ खुनकी थी। जयराज नीता के कमरे से दूर, बरामदे में आरामकुर्सी पर बैठ गया। नीता भी लगातार लेटने से ऊब कर कुछ ताज़ी हवा पाने के लिए अपने शरीर को सम्भाले लँगड़ाती-लँगड़ाती बरामदे में दूसरी कुर्सी पर आ बैठी। उसने कराहट को गले में दबा, जयराज को नमस्कार कर हालचाल पूछ कर कहा—"मुझे तो शायद सफ़र की थकावट या नई जगह के कारण रात नींद नहीं आ सकी......"

जयराज के लिए वहाँ बैठे रहना असम्भव हो गया। वह उठ खड़ा हुआ और नीता को कुछ देर में लौटने की बात कह बँगले से निकल गया। परेशानी में वह इस सड़क से उस सड़क पर मीलों घूमता इस संकट से मुक्ति का उपाय सोचता रहा। छुटकारे के लिए उसका मन वैसे ही तड़प रहा था, जैसे चिड़ीमार के हाथ में फंस गई चिड़िया फड़फड़ाती है। उसे उपाय सूझा। वह तेज़ कदमों से डाकखाने पहुँचा। एक तार उसने सोम को दे दिया:— अभी बनारस से तार मिला है कि रोग-शैया पर पड़ी माँ मुझे देखने के लिए छटपटा रही हैं। इसी समय बनारस जाना अनि-वार्य है। मकान का किराया छः महीने का पेशगी दे दिया है। नौकर यहीं रहेगा। हो सके तो तुम आकर पत्नी के पास रहो।

यह तार दे वह बंगले पर लौटा। नौकर को इशारे से बुलाया। एक सूटकेस में आवश्यक कपड़े ले उसने नौकर को विश्वास दिलाया कि दो दिन के लिये बाहर जा रहा है। सोम को दी हुई तार की नकल अपने जाने के बाद नीता को दिखाने के लिये दे दी और हिदायत की, "बीबी जी को किसी तरह का भी कष्ट न हो!"

बनारस में जयराज को रानीखेत से लिखा सोम का पत्र मिला। सोम ने मित्र की माता के स्वास्थ्य के लिये चिन्ता प्रकट

की थी और लिखा था कि हाईकोर्ट में छुट्टियां हो जाने से वह रानीखेत पहुंच गया है और वह और नीता उसके लौट आने की प्रतीक्षा उत्सुकता से कर रहे हैं।

जयराज ने उत्तर में सोम को धन्यवाद दे कर लिखा कि वह मकान और नौकर को अपना ही समझ कर निस्संकोच वहां रहे। वह स्वयं अनेक कारणों से जल्दी नहीं लौट सकेगा। सोम बार-बार पत्र लिख कर जयराज को बुलाता रहा परन्तु जयराज रानीखेत न लौटा। आखिर सोम मकान और सामान नौकर को सहेज, नीता के साथ इलाहाबाद लौट गया। यह समाचार मिलने पर जयराज ने नौकर को सामान सहित बनारस बुलवा लिया।

जयराज के जीवन में सूनेपन की शिकायत का स्थान अब सौन्दर्य के धोखे के प्रति ग्लानि ने ले लिया। जीवन की विरूपता और वीभत्सता का आतंक उसके मन पर छा गया। नीता का रोग से पीड़ित, बोझल, कराहता हुआ रूप उसकी आँखों के सामने से कभी न हटने की जिद्द कर रहा था। मस्तिष्क में समा गई इस ग्लानि से छुटकारा पाने का दृढ़ निश्चय कर वह सीधा कश्मीर पहुँचा। एक बार फिर बरफानी चोटियों के बीच कमल के फूलों से घिरी नीली डल झील में शिकारे पर बैठ उसने सौन्दर्य के प्रति अनुराग पैदा करना चाहा। समुद्र के किनारे जा उसने चांदनी रात में ज्वार भाटे का दृश्य देखा। जीवन के संघर्ष से गूजते नगरों में उसने अपने आप को भुला देना चाहा परन्तु मस्तिष्क में भर गये वीभत्स यथार्थ ने उसका पीछा न छोड़ा। बनारस लौट आया और अपने ऊपर किये गये अत्याचार का बदला लेने के लिये रंग और कूची लेकर कैनवेस के सामने जा खड़ा हुआ।

जयराज ने एक चित्र बनाया, पलंग पर लेटी हुई नीता का। उसका पेट फूला हुआ था, चेहरे पर रोग का पीलापन, पीड़ा से फैली हुई आंखें, कराहट में खुल कर मुड़े हुए होंठ, हाथ पांव पीड़ा से छटपटाते हुए।

जयराज यह चित्र पूरा कर ही रहा था कि उसे सोम का पत्र भी मिला। पत्र में उसके पुत्र के नामकरण की तारीख बता कर बहुत ही प्रबल अनुरोध किया गया था कि उसे अवश्य ही

इलाहाबाद आना पड़ेगा। जयराज ने झुंझलाहट में पत्र को मोड़ कर फेंक दिया, फिर औचित्य के विचार से एक पोस्ट कार्ड लिख डाला–"धन्यवाद। शुभ कामना और बधाई! आता तो जरूर परन्तु इस समय स्वयं मेरी तबीयत ठीक नहीं। शिशु को आशीर्वाद!"

सोम और नीता को अपने सम्मानित और कृपालु मित्र का पोस्टकार्ड शनिवार को मिला। रविवार वे दोनों सुबह की गाड़ी से बनारस जयराज के मकान पर जा पहुंचे। नौकर उन्हें सीधे जयराज के चित्र बनाने के कमरे में ही ले गया। वह नया चित्र सब से आगे अभी चित्र बनाने की टिकटिकी पर ही रखा हुआ था। सोम और नीता की आंख उस चित्र पर पड़ी और वहीं जम गई।

जयराज अपराध की लज्जा से गड़ा जा रहा था। बहुत देर तक उसे अपने अतिथियों की ओर देखने का साहस ही न हुआ और जब देखा तो नीता गोद में किलकते बच्चे को एक हाथ से कठिनता से सम्भाले दूसरे हाथ से साड़ी का आंचल होठों पर रखे अपनी मुस्कराहट छिपाने की चेष्टा कर रही थी और उस की आंखे गर्व और हंसी से तारों की तरह चमक रही थीं। लज्जा और पुलक की मिलावट से उसका चेहरा सिंदूरी हो रहा था।

जयराज के सामने खड़ी नीता की वास्तविकता रानीखेत में नीता को देखने से पहले उस के सम्बन्ध में बनाई कल्पनाओं से कहीं अधिक सुन्दर थी। जयराज के मन को एक धक्का लगा—"ओह, धोखा!" और उसका मन फिर धोखे की ग्लानि से भर गया।

जयराज ने उस चित्र को नष्ट कर देने के लिये समीप पड़ी छुरी हाथ में उठा ली। उसी समय नीता का पुलक भरा शब्द सुनाई दियाः—"इस चित्र का शीर्षक आप क्या रखेंगे?"

जयराज का हाथ रुक गया। वह नीता के चेहरे पर गर्व और अभिमान के भाव को देखता स्तब्ध खड़ा था।

कलाकार को अपने इस बहुत ही उत्कृष्ट चित्र के लिये कोई शीर्षक न खोज सकते देख नीता ने अपने बालक को अभिमान से आगे बढ़ा मुस्करा कर सुझाया'''—"इस चित्र का शीर्षक रखिये, 'सृजन की पीड़ा'।"

दो

हाय राम ! ...ये बच्चे !!!

जोशी साहब और मीर साहब पड़ोसी हैं। पड़ोस दोनों के लिये अच्छा है। दोनों बड़े आदमी हैं। यों तो ब्राह्मणों में जोशी और मुसलमानों में सैय्यद कुल के बड़प्पन और पवित्रता से ही बड़े होते हैं परन्तु वकील जोशी साहब और डाक्टर मीर साहब उस बड़प्पन पर निर्भर नहीं करते। जोशी साहब ज़िले के सफल वकील हैं और मीर साहब ज़िले के सिविल सर्जन। दोनों ही उदार विचार हैं। उनकी साम्प्रदायिकता केवल घर के भीतर रसोई-चौके तक ही सीमित है। विचारों से दोनों आधुनिक हैं। अपने बच्चों के लिए कम हैसियत के परिवारों के गन्दे बच्चों की सोहबत-संगत पसन्द नहीं करते।

शहर में लड़के-लड़कियों के लिये और फिर हिन्दू-मुसलिम बच्चों के लिये अलग-अलग स्कूल मौजूद हैं परन्तु बड़े लोगों के बच्चे सफाई और सभ्यता के ख्याल से प्रायः मिशन स्कूल में ही पढ़ते हैं। इस देश को सभ्य बनाने वाले अंग्रेज़, इस देश से जाते समय सभ्यता और सफाई की विरासत अपने सहधर्मियों को ही सौंप गये हैं। वकील साहब ऊंचे कुल के ब्राह्मण हैं और डा० मीर हज़रत मुहम्मद के रक्त का दावा करते हैं परन्तु दोनों को ही सभ्यता और सफ़ाई का अंग्रेजी कायदा पसन्द है। बच्चों को सभ्य और सफ़ाई-पसन्द बनाने के लिए दोनों ने मिशन स्कूल में दाखिल करवा दिया है। वकील साहब की दोनों लड़कियां नीलू और ऊषा, डा० खान के पांच बरस के लड़के बन्ने और सात बरस की लड़की नस्सू (नसीम) एक ही जगह पढ़ते हैं।

नीलू और नस्सू समवयस्क, सहपाठी और पड़ोसी होने के कारण सहेलियां भी बन गई हैं। दोनों वही खेल खेलती हैं जो हिन्दुस्तान भर की इस आयु की लड़कियां खेला करती हैं; गुड़िया का खेल। दोनों ने लकड़ी के खाली खोखों में अपनी गुड़ियों के मकान सजाये हुए हैं और अपनी गुड़ियों की शादियां करती रहती हैं। इन शादियों में एक दूसरे को न्योतती रहती हैं। दोनों के गुड्डे आधुनिक यानि साहबी पोशाक पहने हुए हैं परन्तु गुड़ियों की पोशाक में कुछ अन्तर है। नीलू की एक गुड़िया साड़ी, एक लहंगा और तीसरी फ्राक पहने है। नस्सू की एक गुड़िया सलवार पहने हुए है, दूसरी गरारा और तीसरी फ्राक। इतने साम्प्रदायिक भेद से उन में दंगा हो जाने की कभी कोई आशंका नहीं हुई। अलबत्ता, नीलू अपनी मां से एक सलवार पहने गुड़िया और नस्सू अपनी अम्मी जान से एक साड़ी वाली गुड़िया मांगती रहती है।

डा० मीर को चौथे पहर अपने यहां बन्ने और नस्सू के साथ नीलू और ऊषा दिखाई दे जायें तो सभी को अपने पास बुलाकर दो-दो बिस्कुट अपने हाथ से उनके मुंह में देकर खुश हो जाते हैं। दोनों की गुड़ियों का हाल-चाल पूछ लेते हैं। गुड़ियों के लिये चाकलेट ला देने का पक्का वायदा कर भूल जाते हैं। बच्चे आपस में इतने हिलमिल गये हैं कि दोनों घरों में सभी जगह कमरों और बरामदों में धमा-चौकड़ी मचाते रहते हैं।

नस्सू की अम्मीजान चौथे पहर, बन्ने और नस्सू को नाश्ता देने लगती हैं तो नीलू और ऊषा को साथ देख उन्हें भी कुछ देने को मन हो आता है परन्तु अपनी रसोई में पकी चीज़ ब्राह्मण के बच्चों को देते, हाथ झिझक जाता है। वे 'आदमी' की बनाई चीज छोड़, भगवान या अल्लाह की बनाई चीज़, जिसमें हिन्दू-मुसलमान की छूत का परहेज नहीं होता, कोई फलफल या कारखाने का बना बिस्कुट, टाफ़ी जोशी साहब के बच्चों को दे देती हैं। ऐसी कठिनाई जोशी साहब के यहां नहीं होती क्यों कि ब्राह्मण अपने आपको संसार के सब मनुष्यों से पवित्र समझते हैं। ब्राह्मण के विचार में उसके हाथ की छुई हुई चीज से किसी को परहेज़ नहीं हो सकता परन्तु एक झिझक यहां भी हो ही आती है।

झिझक ऐसी कि जब नीलू और ऊषा की मम्मी या दादी अपने बच्चों को खाने के लिए कोई चीज काँसे की कटोरी या तश्तरी में देती हैं तो वही चीज बन्ने या नस्सू को काँसे की कटोरी या तश्तरी सामने रहने पर भी चीनी या कांच का बरतन ढूंढ़ कर देनी पड़ती है। इनके विश्वास में कांसे का बरतन पवित्र और चीनी या कांच का बरतन अपवित्र होता है। यों भी कहा जा सकता है कि कांसे-पीतल का बर्तन हिन्दू होता है जो दूसरों की छूत से अपवित्र हो जाता है। काँच और चीनी के बर्तन अपवित्र ही होते हैं। वे स्वयं सदा कांसे-पीतल के बरतन का ही व्यवहार करती हैं, चीनी या शीशे के बरतन का कभी नहीं। मुसलमान चाहे कितना ही सुथरा या बड़ा आदमी हो, उसके बच्चे चाहे कितने ही प्यारे लगें, उन्हें अपने खाने के बर्तन में कैसे खिलाया जा सकता है? मुसलमान या अछूत को धातु के बर्तन में खिला देने के बाद, बर्तन को शुद्ध करने के लिए आग में रखना जरूरी हो जाता है। वे स्वयं कुछ खाने-पीने से पहले बन्ने और नस्सू को बाहर खेलने के लिए जरूर बहला देती हैं। खाने-पीने की चीज़ पर अछूत या मुसलमान की दृष्टि पड़ जाने से भी चीज ऊँची जात के हिन्दुओं के लिए अपवित्र हो जाती है।

नीलू और ऊषा को दादी और माँ ने कई बार समझाया है—"पागलो, रसोई खेलने की जगह नहीं है।""रसोई और पूजा की कोठरी में बन्ने और नस्सू को कभी नहीं लाना। इतना भी नहीं समझतीं तुम कि मुसलों को रसोई और पूजा की कोठरी में नहीं लाते ?"

बच्चे काफी तेजी से झेंपने और समझने लगते हैं! बन्ने अभी पाँच ही वर्ष का है परन्तु नस्सू कोई नयी बात देखती है तो अपनी पलकें फैला कर स्थिर आँखों से सोचने लगती है। नीलू अपनी गुड़िया की शादी अपने गुड्डे से कई बार कर चुकी थी। उस दिन वह अपनी गुड़िया की शादी नस्सू के गुड्डे के साथ करने के लिए नस्सू को न्योत कर साथ लिया लाई थी। दोनों समधिनें बनने वाली थीं। यों तो गुड़िया की शादी और दावत का प्रबन्ध बरामदे में ही था परन्तु किसी चीज की जरूरत पड़ जाने पर दोनों साथ-साथ दौड़ती रसोई में जा पहुंचीं।

नीलू की माँ और दादी उस समय शाम की चाय जोशी साहब के लिए उनके कमरे में भेज कर स्वयं काँसे के गिलासों में चाय पी रही थीं। दोनों लड़कियों को रसोई में घुसे आते देख उन्होंने अपनी चाय नस्सू की नज़र से छिपा कर बड़ी कठिनाई से उन्हें दरवाजे पर ही रोका और दो मिनिट में स्वयं ही सब कुछ बरामदे में पहुँचा देने का आश्वासन दे बहला दिया।

ऐसा पहले भी कई बार हो चुका था लेकिन उस दिन नस्सू को कुछ अधिक समझ आ गया। बरामदे की ओर लौटते हुए उसने नीलू के गले में बाँह डाल कर पूछा—"एक बात सुन! तेरी दादी और भाबी मुझे रसोई में नहीं आने देतीं? मेरे सामने खातीपीती भी नहीं!......क्या बात है?"

नीलू ने भौंह चढ़ा कर सोचा और नस्सू की कमर से लिपटते हुए उसे अपने साथ चिपका कर समझाया—"मैं बताऊँ, तू मुसली है न?"

नस्सू ने सोच कर पूछा—"अच्छा, तू मुसली नहीं है?"

"नहीं, मैं जोशी हूँ।"—नीलू ने समझाया—"तेरी अम्मीजान सलवार पहनती हैं। वो मुसली हैं। मेरी अम्मी धोती पहनती है। वो जोशी है।"

"तू कहाँ धोती पहनती है? तू फराक पहनती है। मैं भी फराक पहनती हूँ"—नस्सू ने फिर आग्रह किया।

"मैं बताऊँ, अभी हम लोग बच्चे हैं"—नीलू सोच कर बोली—"जब हम बड़ी हो जायेंगी तो मैं मम्मी की तरह धोती पहनूंगी। मैं जोशी हो जाऊंगी। तू अम्मीजान की तरह सलवार और गरारा पहनेगी। तू मुसली हो जायगी। फिर मैं तेरे हाथ का नहीं खाऊंगी। अभी तो मैं छोटी हूँ। छोटों को समझ नहीं होती है न? बड़ी हो जाउंगी तो तेरे हाथ का थोड़े ही खाऊंगी!"

"तू मेरे हाथ का नहीं खायेगी तो मैं भी तेरे हाथ का नहीं खाऊंगी।"—नस्सू ने समर्थन किया—"जब हम बड़ी हो जायेंगी तो हिन्दू और मुसलमान हो जायेंगी। हिन्दू-मुसलमानों में खूब लड़ाई होगी। हम लोग भी खूब लड़ेंगी, है न?"

"हां, तो फिर तेरे गुड्डे और मेरी गुड़िया की शादी कैसे होगी ?······हम खेलेंगी कैसे ?"—नीलू ने चिन्ता से पूछा ।

"शादी नहीं होगी तो आओ गुड्डे गुड़िया की लड़ाई का खेल खेलें !"—नस्सू ने सुझाया—"तू मेरे गुड्डे को छुरी मार, मैं तेरी गुड़िया को छुरी मारूंगी और फिर गुड्डे-गुड़िया के घर में आग लगा देंगे !······है न ?"

नीलू के सहमत हो जाने पर नस्सू ने सुझाया—"तो जा, तू रसोई से तरकारी काटने की छुरी ले आ। गुड्डे-गुड़ियों की लड़ाई का खेल खेलें ।"

नीलू ने जा कर दादी से वही छुरी मांगी। उन्हों ने विस्मय से पूछा—"हैं, छुरी ?········छुरी का क्या करोगी ?······न ! हाथ कट जायेगा ।"

"नहीं नहीं !···नहीं कटेगा ! हम हिन्दू-मुसलमान की लड़ाई खेलेंगे !···दो न जल्दी !"—नीलू ने मचल कर आग्रह किया ।

दादी की आंखें भय और विस्मय से फैल गईं दोनों हाथों में सिर थाम, उन्हों ने नीलू की मां को पुकारा—"हाय राम !···देख तो !!···ये बच्चे !!!"

तीन

आदमी या पैसा ?

कालिज के सहपाठी हम सब लोग अब बिखर चुके हैं। हम लोगों के जीवन में अब कोई सादृश्य और समता रह भी नहीं गयी। कभी आपस में साक्षात्कार हो जाने पर शिष्टाचार के नाते मुस्कराहट भर होठों पर आ जाती है। अधिकांश में हम लोग अपनी-अपनी किञ्चुता में, या कहिये निर्वाह न हो सकने लायक आमदनी में सन्तोष और सफलता अनुभव कर लेने की आध्यात्मिक प्रक्रिया का अभ्यास करते रहते हैं।

अपने सहपाठियों में से प्रायः नरदेव और राम बाबू की ही याद आती है। नरदेव आई० सी० एस० में चला गया था। वह अब सेक्रेटेरियट में एक काफी ऊँचे पद पर है। जब कोई पूछ बैठता है कि हमने एम० ए० कब पास किया था तो मुँह से उत्तर निकल जाता है—"हमने और नरदेव ने प्रेज़ीडेन्सी कालिज से एक साथ ही एम० ए० किया था। अरे, जानते नहीं ? वही नरदेव, जो स्वायत्तशासन के सेक्रेटरी हैं, दो हजार मासिक ले रहा है।"

इस दृष्टि से हमारे दूसरे साथी राम बाबू को भी बहुत सफल समझा जाना चाहिये परन्तु उनके प्रति समाज में और अपने मित्रों में भी वह आदर नहीं जो नरदेव के लिए है। तनखा के नाम पर राम बाबू भी डेढ़ हज़ार ले रहे हैं परन्तु न उनके चेहरे पर और न समाज के हृदय पर ही उनका वैसा रोब है। हम लोग प्रायः राम बाबू की चर्चा सहानुभूति से कर संतोष अनुभव करते हैं कि यह भी कोई ज़िन्दगी है ?...इसे तो बरबादी ही समझिये !

राम कालिज में प्रतिभावान और बेपरवाह भी था। कालिज के बाद पत्रकार बन गया। खबरें इकट्ठी करने या गढ़ने और उन्हें रंग देने की अद्वितीय प्रतिभा के कारण आज पत्रकारों में उनकी तो नहीं; अलबत्ता उसकी कलम की धाक है। शरीर से रूखा-सूखा, कपड़ों की ओर से भी बेपरवाह, आंखों पर मोटे-मोटे शीशों का चश्मा चढ़ाये, मेज पर बैठ कुछ घन्टे कलम घिसकर वह ऐसी बात पैदा कर सकता है कि कभी-कभी सरकार भी परेशान हो जाती है और समाज के बड़े-बड़े स्तंभ पूँजीपति भी तिलमिला उठते हैं। यह सब कर सकने पर भी राम बाबू की अवस्था दयनीय ही है।

राम बाबू एक बड़े होटल में रहते हैं। डेढ़ हजार मासिक तनखा पाने पर भी होटल का मासिक बिल भी छः, छः महीने का उधार चढ़ा रहता है। तनखा मिलते ही यदि उधार लेने वाले आ न पहुँचे तो तनखा सप्ताह भर में ही समाप्त हो जाती है और फिर मित्रों से दस-दस, पाँच-पाँच उधार माँगते फिरना ! सबसे बड़ा प्रलोभन तनखा मिलते ही राम के सामने आता है, घुड़दौड़ में बाजी लगाने का।

राम बाबू से अपनी आंतरिकता चली आ रही है। उसकी दयनीय दशा देख कर डेढ़हज़ार रुपये माहवार पाने वाले व्यक्ति की तुलना में उससे लगभग एक चौथाई तनखा पा कर भी अपना जीवन सन्तुष्ट समझने का संतोष होता है और उसे उपदेश दे सकने की महत्वाकांक्षा भी पूरी होती है। राम का जीवन एक खूब ऊँचे लम्बे बाँस जैसा जान पड़ता है, जो बिना किसी सहारे के अकेला खड़ा है। हवा और आंधी में ऐसे झूलता है कि जब चाहे गिर जाये ! हम लोगों के जीवन बीसियों टेकों और रस्सियों से पृथ्वी के साथ जकड़े हुए हैं। ऊंचे न सही पर उनके हरदम गिर पड़ने की आशंका भी नहीं। इसलिए राम को कई बार समझाया है कि यदि तुमसे अपने खर्च की व्यवस्था ठीक से नहीं हो पाती तो तनखा मिलने पर हमारे यहाँ, अपनी भाभी के पास जमा कर दिया करो। वह बड़ी समझदार है। देख लो, चार सौ में घर चलाती है। आड़े समय के लिए कुछ बचा भी रखती है। जानते हो, बाल-बच्चे वाला घर है !···तुम, जैसे-जैसे जरूरत हो, लेते जाया करो !"

राम बाबू ने दैन्य से दांत निकाल कर हँसते हुए हाथ हिला कर उत्तर दिया—"यह बात नहीं ! पर भाई, आखिर करें भी तो क्या ?……बस ऐसे ही चलता है।……विवशता है !"

"विवशता है ?…तनख्वा मिलते ही पांचसौ हज़ार घुड़दौड़ में लगा देने की तुम्हें क्या विवशता है ? तुम आशा करते हो, पचास हजार मिल जायगा और पाँच सौ-हज़ार खो बैठते हो। तुम्हें पचास हज़ार की जरूरत ही क्या है ?…क्या डेढ़ हज़ार में गुज़ारा नहीं चल सकता ? हम लोगों को देखो !…जेब का रुपया खो देने पर परेशानी जो होती है सो साफ़ ही है। मान लो, पचास हज़ार आ जाय और वह भी दांव पर लगा दिया तो ?"—तर्क से राम बाबू को समझाने का यत्न किया।

"सवाल गुज़ारे का नहीं है, भाई ! विपद तो यही है कि मैं गुज़रता जा रहा हूँ !"—विवशता में हाथ फैला राम अपनी कटहल के छिलके जैसी हजामत बढ़ी ठोड़ी उठा दी—"पचास हज़ार की ज़रूरत नहीं, ठीक कहते हो !…हज़ार में ही काम चल सकता है, यह भी ठीक है; पर आदमी करे क्या ? और करे किसके लिए ?"—कुर्सी पर सम्भल कर उसने कहा—"सुनो, एक बाज़ी लगा देने से ऐसा मालूम होता है कि कोई ऐसी चीज सामने आ गई है जिसमें आदमी डूब गया हो…! सब कुछ उसी के लिए है, समझे ! उससे परे कुछ दिखाई नहीं देता। आशा और आशंका की झनझनाहट अनुभव होने लगती है। कुछ देर के लिए ज़रा ज़िन्दगी मालूम होती है। *एक सनसनाहट ! जीवन की एक झनकार ! एक थ्रिल* मालूम होती है। आदमी जिन्दगी के बोझ को भूल जाता है। जिन्दगी स्वयं ही दौड़ पड़ती है, उसे ढोना नहीं पड़ता। मन उमड़ पड़ता है कि जूझ जायें !…नहीं तो ज़िन्दगी में है क्या ?…बाज़ी हार गये तो क्या ? और जीत गये तो क्या ? गरमी तो थ्रिल की होती है। वह थ्रिल ही सब कुछ है।"—राम शिथिलता में कुर्सी पर लुढ़क गया—"और जब जिन्दगी की गरमी, या थ्रिल नहीं रहती तो फिर थ्रिल के अभाव को अनुभव न करने के लिए, उसे डुबो देने के लिए, मन में गरमी पैदा करने के लिए तबीयत होती है कि पियो ! अगर न पियो तो सोचते रहो कि ज़िन्दगी किस लिए है ?"—राम ने उत्तर मांगने के लिये दीनता से हाथ फैला दिया।

राम उस रोज़ बीस रुपये उधार मांगने आये थे। जानता था देना ही पड़ेगा परन्तु रुपया उधार दे देने से पहले इतने समर्थ मित्र की भलाई के विचार से यह समझा देना भी कर्त्तव्य समझा। "देखो, आड़े समय तुम्हें दस-बीस रुपये उधार दे सकता हूँ। बताओ, जीवन में तुम सफल हो या मैं ? रामू भैया, जिन्दगी को जानबूझ कर ढलवान पर ढकेलते जाने में ही क्या संतोष ?··· एक दिन ऐसी जगह पहुँच जाओगे कि ऊपर चढ़ना सम्भव ही न रहेगा ! कहीं एक जगह पाँव टिका कर फिर ऊपर की ओर चढ़ने की कोशिश करनी चाहिए !······इतना घुड़दौड़ में उड़ा देना, इतना पी डालना और रहा-सहा छोकरियों को खिला देना; इसमें क्या तथ्य है ?···तुम्हारे हाथ में क्या रह जाता है ? भाई, जीवन में कुछ स्थिरता तो हो !···तुम्हारे हाथ में प्रतिभा और पैसा दोनों हैं। तुम चाहो तो क्या नहीं कर सकते ?"

"बताओ मैं क्या करूं ?···मैं क्या कर सकता हूं ?"—राम ने ठोड़ी पर हाथ रख मेरे आग्रह के प्रति विवशता प्रकट की—"डेढ़ हज़ार रुपये से ज्यादा तनखा की आशा इस व्यवसाय में नहीं की जा सकती। इसके आगे एक ही महत्वाकांक्षा हो सकती है कि मैं अपना पत्र चलाने की बात सोचूं। मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ कि साधनहीन हो कर भी अपरिमित साधन पत्र-मालिकों से होड़ करने की बात सोचूं। और वह सिर-दर्दी मैं समेटूं किस के लिये ?···मैं डेढ़हज़ार रुपये में अपना श्रम बेचता हूं परन्तु मैं अपने पूंजीपति मालिक के हाथ में एक चाबुक की तरह हूं, या तुम समझ लो, मेरा मालिक मुझे जनमत पैदा करने का कामतो मशीन समझता है, जिसे वह अपनी सामाजिक और राजनैतिक शक्ति बनाये रखने के लिये चला रहा है। इससे मशीन को क्या फ़ायदा ?···क्या संतोष ?···मशीन का अपना क्या अस्तित्व ?

"सुनो, मैं इतना मूर्ख नहीं हूं कि अपने पूंजीपति मालिक की दृष्टि में उपयोगी हो सकने के कारण अपने व्यक्तित्व को कोई खास महत्वपूर्ण चीज समझ बैठूं। मैं यह भी जानता हूं कि जो आदमी डेढ़ हज़ार रुपये माहवार दे सकता है, वह पैसे के लिये बातूनी कलाबाज़ी करने वाले मुझ जैसे बीसियों आदमी खरीद सकता है। मुझसे तेज़ बीसियों पड़े हैं, जिन्हें अवसर नहीं मिल रहा।

थे हजार आठसौ में वही कलाबाज़ियां कर सकते हैं जो मैं पन्द्रह सौ में करता हूं। कहो, किस बात के लिये पांव जमाने की कोशिश करूँ ?

"बताओ जिन्दगी में क्या उद्देश्य बना लूँ ? अगर एक औरत घर में लाकर उसे और उसके बच्चों को ही पालना शुरू कर दूँ तो यही कौन बड़ा काम है !"—राम ने प्रश्न में मुँह फैला अपने टूटे हुए दांत दिखा दिये—"किसी ने मुझे खरीद रखा है, किसी को मैं खरीद लाऊं ?......यदि मुझे उसका स्वभाव और व्यवहार असह्य जान पड़ा तो ?...मेरे जैसे दो चार और मनुष्य पैदा हो जायंगे तो इससे समाज का क्या बन जायगा ? ....मेरा मालिक मेरा उपयोग करता है। मैं अपने आप को भुलाने की चेष्टा कर आत्माभिमान बचाये हूं।...अच्छा अब बीस रुपये निकालो !"—राम ने उठने के लिये तैयार होकर कहा—"भई, आज झरना के यहां जाना चाहता हूं। तबीयत बड़ी सुस्त है।...जल्दी करो।"

"चले जाना"—मैंने कहा—"ऐसी जल्दी क्या है ?"

"जल्दी ही है। फिर कोई और वहां जा बैठेगा तो मुश्किल होगी न ?"—राम उतावली से बोला—"निकालो न रुपये !"

"झरना के यहां आखिर क्या मिल जायेगा ?" -मैंने समझना चाहा।

"क्या मिल जायगा ?"—हाथ हिलाते हुये राम ने उत्तर दिया "दो-तीन घण्टे अपने आप से चिढ़ूंगा नहीं।...खिझता नहीं अनुभव करूंगा। उसकी बातों में भूला रहूंगा।...दिल बहलाव रहेगा !"

"जब तुम जानते हो"—मैंने आग्रह किया—"कि उसके यहां बीसियों आदमी आते जाते हैं तो उसकी बातों में बहलना धोखा नहीं ?

"यह जान कर जाता हूँ तो धोखा नहीं है"—राम समझाने के लिये शिथिलता छोड़ कुर्सी पर आगे झुक गया—"मैं कौन उसका उम्र भर का ठेका लेने को तैयार हूँ ! बीस रुपये दूंगा, रात भर का हक होगा। तुम, क्या चाहते हो, वह मुझे यह कहे कि वह मेरे सिवा संसार में किसी और को जानती ही नहीं !...मेरे लिये

जान दे देगी !''''उस पाखंड में क्या रखा है ? सच पूछो तो वह निन्यानबे फी सदी पतिव्रताओं से ज्यादा ईमानदार है ।''

राम की बात का विरोध किया—''वह ईमानदार है ? उसके साथ ईमानदारी का सवाल ही क्या ?''

''है कैसे नहीं ? पहिली ईमानदारी तो उसकी यही है कि वह ईमानदारी का दम नहीं भरती । वह ऐसी जगह बैठी है जहाँ बात साफ है कि सम्बन्ध या मित्रता कुछ घण्टों की है । अगर किसी का मन धोखे के बिना न मानता हो तो इससे अधिक जो चाहे समझ ले !''

''जब जानते हो कि कुछ घण्टों के रिझाव का किराया दे रहे हो, तो उसे प्रेम और मित्रता समझ सकते हो ?''—मैंने तर्क किया ।

' प्रेम और मित्रता क्या है ? कुछ घण्टे अपने मन की खिन्नता भुलाने का माल है, भैया ! जैसी बात मैं चाहता हूँ, वैसी सी ही वह करती है । बस इसी बात का दाम है । और फिर प्रेम होता क्या है ? किसी से सन्तोष पाने से ही तो प्रेम होता है ! जिन्दगी भर का प्रेम मेरी समझ में नहीं आता ! जिससे मन ऊबने लगे उससे प्रेम कैसा ? बिना प्रेम अनुभव किये प्रेम के अभाव की तुलना कैसे की जाये ? यदि मैं उसे छल करने के लिए विवश न करूँ, तो वह छल नहीं करती ।''

''छल नहीं करती ?''—मैंने राम को कोंचने के लिये विस्मय प्रकट किया।

''छल नहीं करती है ! पिछली दफे जब मैं उसके यहां गया तो यों ही थकावट सी अनुभव कर मैंने कहा, झरना मेरे शरीर पर पाउडर लगा कर मालिश कर दो ! वह मालिश कर रही थी । मुझे अच्छा लगने लगा । उससे कुछ बात करने के लिये पूछ बैठा, मुझे तो मालिश से अच्छा लग रहा है परन्तु तुम्हें इससे क्या संतोष ?

''मेरी जांघ पर बहुत सा पाउडर डाल उसे हाथों से मलते हुए उसने उत्तर दिया—''संतोष क्यों नहीं बाबू ! दाम मिलता है ।''

"मैंने बात बढ़ाई—"टका ही मिलता है न ?···सन्तोष तो नहीं मिलता ?"

"टके से ही सन्तोष होता है बाबू !"—उसने उत्तर दिया—"पेट तो भरना है। टका तो चाहिए। टके के लिए करती हूँ। नहीं तो तुम टका क्यों दोगे ?"

"टके के लिये करती हो ?"—मैंने फिर पूछा—"अगर तेरे पास काफ़ी रुपया होता तो क्या करती ?"

"करती क्या बाबू ?···करती यह कि मजे में लेट जाती और किसी को बीस रुपये देकर कहती कि रात भर मेरे शरीर की मालिश करो !"

राम ने कुर्सी पर सम्भलते हुये प्रश्न किया—"बोलो, है ईमानदार कि नहीं ?"—फिर ताव में आ कर बोला—"मैंने पूछा यह काम क्या तुम्हें अच्छा लगता है ?···तुम सन्तुष्ट हो ?"

उसने उत्तर दिया—"बाबू, क्या सब लोग संतुष्ट ही हैं ? मनचाहा ही काम करते हैं ? पेट बहुत कुछ कराता है बाबू। जैसे और सौ काम वैसे एक यह काम ! पालने वाला कोई एक न हुआ, दस-बीस के ही सहारे जिन्दगी काट रही हूँ। दस बुरा कहते हैं तो दस को अच्छी लगती हूँ।···चोरबाजार करने वाले को सब गाली देते हैं तो क्या कोई अपना धन्दा छोड़ देता है ? मैं कौन अनोखी बात करती हूँ, बाबू ? अपने अपने घरों में दूसरी सब औरतें क्या करती हैं ?"

मैंने समझाया—"झरना, कैसे कैसे आदमी तेरे यहाँ आते हैं ?'—उसे गुलजारासिंह की याद दिलाई। गुलजारासिंह ड्राइवर है। तारकोल के पीपे की तरह काला, मोटा और पसीने से चिपचिपा; सिर पर सूखी झाड़ी सी दाढ़ी और दुर्गन्ध भरी पगड़ी। उसे झरना के यहां आते देख मुझे घृणा होती है। उसकी याद दिला कर मैंने कहा—"कैसे-कैसे भुतनों के साथ सो जाती है तू ?······ बुरा नहीं लगता ?"

"क्या बुरा लगता है बाबू ? यही बात तुम गुलजारासिंह की बहू से तो पूछो ?···उसकी बहू 'न' कर सकती है ? वह उसे रोटी जो देता है ? मुझे भी कभी-कभी देता है। वो कभी-कभी आता है।···

कैसे इनकार करूं ?...अच्छा बाबू, तुम जिस मालिक की नौकरी करते हो, तुम्हें क्या बहुत प्यारा लगता है ? बाबू जो अन्न देता है, अपना काम लेता है। तुमने नहीं देखा, कैसे कैसे भुसंड सेठ परियों को लिये फिरते हैं। कोई भलीमानस परी इस पर एतराज करती है ?...उन्हें सेठ का क्या प्यारा लगता है ? पैसा ही तो !... बाबू, तुम बीस देते हो, तुम्हारी पुरानी बात है। गुलजारासिंह आता है, पच्चीस-तीस दे जाता है। बोतल साथ लाता है। कभी साड़ी, कभी कपड़ा अलग से दे जाता है। बाबू, यह आदमी नहीं सोता साथ, उसका पैसा सोता है !"

राम उच्छृंखलता पर उतर आया था। मैं चौंका, रसोई में बैठी बच्चों की मां न इसकी बातें सुन रही हो !

"बस ! बस !"—हाथ के संकेत से उसे चुप करा, रुपये लेने भीतर के कमरे में चला गया।

चार

प्रधान मन्त्री से भेंट

रामराज्य, स्वराज्य या गणराज्य की स्थापना के बाद से भारतीय प्रजा या नागरिकों ने अनेक अधिकारों का आश्वासन पा लिया है। इन अधिकारों में से एक बड़ा अधिकार, अपनी व्यक्तिगत या मामूली से मामूली शिकायतों के लिये मंत्रियों और प्रधान मन्त्री तक से भेंट कर सकने की मांग है। इस अधिकार को व्यवहार में लाने के लिए जनता बहुत उतावली भी जान पड़ती है। भारत की राजधानियों में सूर्योदय के समय ही अनेक प्रकार की पोशाकें पहने लोग, जिनमें खद्दरधारियों की संख्या अधिक होगी, मन्त्रियों, मुख्य मन्त्रियों और केन्द्र में प्रधानमंत्री के निवास-स्थान की ओर बढ़ते हुए दिखायी देते हैं। यह लोग अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार की सवारियों पर सवार रहते हैं। कुछ लोग इस दावे से कि अब जनता का ही राज्य है, सवारी के लिये खर्च की सामर्थ्य न होने पर स्टेशन से पैदल ही मंत्रियों के निवास स्थान की ओर चल देते हैं जैसे लोग तीर्थ स्थान की ओर पैदल जाने में लज्जा अनुभव नहीं करते!

प्रधान मंत्री के बंगले का बरामदा भेंट करने के लिये लालायित अभ्यागतों या यात्रियों से भर चुका था। प्रधान मंत्री के निजी सहायक (प्राइवेट सेक्रेटरी) बरामदे में प्रकट हुए। बहुत समय तक प्रधान मंत्री के स्वभाव और व्यवहार की छाया में रहने के कारण महापुरुष का काफी प्रभाव इन पर पड़ चुका है। बाहर आते समय खद्दर की श्वेत टोपी की नोक ठीक करने के लिये

उठे हुए उनके हाथ विस्मय से फैले रह गये और माथे पर त्योरियां बन गयीं।

"आप लोग "आप लोग इस तरह चले आते हैं ?......आप लोगों को इस बात का ज़रा खयाल नहीं कि प्रधानमंत्री के पास इतना समय नहीं है।...आप लोग नहीं जानते कि कितनी बड़ी-बड़ी समस्याओं का बोझ उनके कंधों पर है ? · आप लोग अपनी छोटी-छोटी बातें से उन्हें परेशान करने के लिये चले आते हैं। आप लोगों की समझ का दायरा कितना तंग है ? आप जानते हैं आज मंत्रिसभा (कैबिनेट) की कितनी ज़रूरी बैठक है और प्रधानमंत्री बैठक में जा रहे हैं। इस समय वे आप लोगों से किसी भी हालत में भेंट नहीं कर सकते!" – प्रधानमंत्री के निजी सहायक ने अभ्यागतों को समझाने की कोशिश की—"आप लोगों को इतना भी व्यवहारिक ज्ञान नहीं कि भेंट करने से पूर्व समय निश्चित कर लेना आवश्यक है ?"

सम्मानित पोशाक पहने तीन अतिथि एक साथ उठ खड़े हुए और जेब अथवा बेग से कागज़ निकाल कर दिखाने का यत्न करते हुए उन्होंने आग्रह किया कि वे मुलाकात निश्चित हो जाने पर ही आये हैं।

उनकी बात पूरी हो सकने से पहले ही दूसरे अभ्यागत हाथ जोड़ गिड़गिड़ा कर बोल उठे—"मैं तीन दिन से भेंट के लिये समय निश्चित करने का यत्न कर रहा हूँ। कोई सुनवाई नहीं हुई......"

"मुझे सिर्फ एक वाक्य कहना है"...एक और अभ्यागत बोले।

अनेक अभ्यागत एक साथ बोल उठे—"केवल दर्शन !"...

एक ओर से पुकार उठी—"हम बीस हज़ार व्यक्तियों के प्रतिनिधि बनकर......"

दूसरी ओर से आवाज़ आई—"अन्नसंकट से हज़ारों व्यक्ति......"

"डिप्टी कमिश्नर के अन्याय......"

"गोली चल गई। पचास आदमी......"

परेशानी से निजी सहायक की आंखें मिच गईं और उनके हाथ आशंका से ऐसे उठ गये जैसे कोई आदमी मवाखा के दल को अपने ऊपर झपटते देख आत्मरक्षा के लिये घबरा गया हो !

"चुप रहिए आप लोग !......यदि आप लोग प्रधान मंत्री से भेंट करना चाहते हैं तो आप लोग एक लाईन में एक ओर खड़े हो जाइये ! प्रधान मंत्री अभी मंत्रिसभा (कैबिनेट) की बैठक के लिए जा रहे हैं। यदि आप लोग उनसे भेंट करना चाहते हैं तो आप लोग यहीं खड़े रहें ! परन्तु यह याद रखिये कि प्रधानमंत्री के आने पर आप एक शब्द भी नहीं बोलेंगे। आप केवल दर्शन कर सकते हैं।"—निजी सहायक ने फिर दोनों हाथ उठाकर अभ्यागतों को समझाने के लिये अपनी बात दोहराई।

हाथ में कागज़ों का छोटा सा पुलिंदा लिये महाशय "द" ने दुबारा साहस किया—"आपने मुझे इस समय आने के लिये लिखा है।"

"चुप रहो !"—निजी कार्यवाहक ने उद्विग्नता से हाथ उठा कर उन्हें बैठने का संकेत किया।

"मेरा मामला बहुत दिन से प्रधान मंत्री के सामने है"—महाशय द ने फिर आग्रह किया और अपने हाथ के कागज़ दिखाते हुये बोले—"मैं केवल यह कागज़ उन्हें सौंप देना चाहता हूँ।"

निजी सहायक शायद महाशय द और उनके मामले से कुछ परिचित थे, बोले—"तुम्हारा मामला प्रधान मंत्री देख चुके हैं। विश्वास रखो, तुम्हारा काम हो जायेगा परन्तु इस समय तुम बिलकुल चुप रहना। इस समय प्रधान मंत्री बहुत ही व्यस्त हैं। निजी कार्यवाहक ने एक दफा फिर सभी अभ्यागतों की ओर देख कर चेतावनी दी—"आप लोग बिलकुल चुप रहिये ! इस समय आप लोग केवल दर्शन कर सकते हैं। प्रधान मंत्री एक मिनिट में आने वाले हैं"—निजी सहायक यह चेतावनी दे भीतर चले गये।

लगभग दो मिनट बाद प्रधानमंत्री खद्दर की श्वेत अचकन, चूड़ीदार पाजामा और सफेद टोपी पहने हुये निजी सहायक के साथ बाहर निकले। उनके दायें हाथ में कागज़ों का एक छोटा सा पुलिंदा थमा हुआ था। प्रधानमंत्री प्रौढ़ावस्था की अपेक्षा की

मुद्रा में चपल चरणों से चले आ रहे थे। अभ्यागतों की ओर देख सौजन्य की एक मुस्कान उनके चेहरे पर आ गई। पुलिंदा सम्भाले दायें हाथ को बायें हाथ के सहयोग से उठा उन्हों ने अभ्यागतों को एक सार्वजनिक नमस्कार किया और ड्योढ़ी में खड़ी मोटर की ओर बढ़ने लगे।

अभ्यागतों के हाथ नमस्कार के लिये उठे। कुछ एक के होंठ हिले परन्तु प्रधान मंत्री के निजी सहायक की चेतावनी के कारण शब्द मुख से न निकल सके।

महाशय त्र अपने आपको सम्भाल न सके। हाथ के कागज़ आगे बढ़ा कर बोल उठे— "मैं यह काग……"

प्रधान मन्त्री उछलकर महाशय त्र के सामने आ पहुँचे—"चुप रहो! चुप रहो!! यह क्या बदतमीजी है?"—गम्भीर अपराध के लिये प्रताड़ना की मुद्रा में प्रधान मंत्री ने आँखें निकाल कर फटकारा।

"मैं-मैं"—महाशय त्र भय से घुघला गये।

"क्या बकवास है? मैं-मैं, मैं कहता हूँ चु-चुप रहो। मैं-मैं कहता हूँ, चुप रहो!"—प्रधान मंत्री क्रोध में थुथला गये—"तुम लोग नहीं समझते कि कितनी बड़ी-बड़ी समस्यायें, कितने बड़े-बड़े मसले, कितनी बड़ी-बड़ी बातें मुल्क के सामने हैं। तुम लोग ज़रा-ज़रा सी बातों को लेकर यहाँ चले आते हो!"—प्रधान मंत्री ने काँपते हुए दोनों हाथों की मुट्ठियां बांध कर समझाया।

"जी……!" क्षमा सी मांगते हुए महाशय त्र ने अपने हाथ के कागज़ प्रधान मन्त्री की ओर उठाते हुए फिर साहस किया।

प्रधान मंत्री ने अपने हाथ के कागज़ फ़र्श पर पटक दिये और महाशय 'त्र' के हाथ से भी कागज छीन कर फ़र्श पर पटक दिये और दोनों हाथों से महाशय त्र के कंधों को खूब झिंझोड़ कर समझाया—"जी! जी! जी!……मैं कहता हूँ, चुप रहो,! चुप रहो!! चुप रहो!!! तुम लोग तमीज़ कब सीखोगे?"

महाशय त्र एक हिचकी ले स्तब्ध रह गये। उन्हें चुप करा देने में सफल होकर प्रधानमंत्री ने पीछे चलते दो अर्दलियों और

अपने निजी सहायक की सहायता की उपेक्षा कर फ़र्श पर पटके हुये काग़ज़ों के पुलिंदे को दायें हाथ में उठा लिया और अपनी उत्तेजना को वश में करने के लिये बायें हाथ से अचकन के बटन ऐंठते हुये तेज कदमों से ड्योढ़ी में खड़ी मोटर की ओर चल दिये।

मोटर के ड्योढ़ी से बाहर निकलते ही पीछे रह गये निजी सहायक क्रोध में आंखें लाल किये महाशय क्ष के सामने पहुंचे। दाँत पीस कर क्रोध से ऊँचे स्वर में उन्हों ने क्ष को फटकारा—"कितने बदतमीज़ हो तुम !···कितना तुम्हें समझाया था लेकिन तुम·········"

"जी···!"—महाशय क्ष ने फर्श से उठा कर हाथ में लिये काग़ज़ दिखा कर क्षमा सी मांगनी चाही।

"जी ! जी ! जी !"···—निजी सहायक का क्रोध विस्फोट की सीमा पर पहुँच गया—"चुप रहो ! चुप रहो !!कितनी अच्छी तरह तुम्हें समझा दिया था लेकिन तुम बाज नहीं आये ! कितने बद किस्मत हो तुम ? अपना बना बनाया मामला तुमने खराब कर दिया और अब भी चुप नहीं रहना चाहते !"

"जी मैं·······"

"जी, जी, जी ! अब भी चुप नहीं रहना चाहते ? निकल जाओ बाहर !"—निजी सहायक ने फैली हुई बांह से बंगले के फाटक की ओर इशारा करते हुए धमकी दी।

"जी मैं यह कहना चाहता हूँ"—महाशय क्ष ने उत्तेजित स्वर को यथासम्भव ऊँचा करते हुये साहस किया—"कि प्रधानमन्त्री अपने काग़ज़ मुझे दे गये हैं और मेरे कागज ले गए हैं।"

"हैं ! हैं ! हैं ! गज़ब हो गया !"—निजी सहायक घबरा गये। "दूसरी मोटर ! दूसरी मोटर ! जल्दी लाओ मोटर !"—उन्हों ने पास ही खड़े अर्दली को हुक्म दिया।

महाशय क्ष के हाथ से कागज झपट निजी सहायक तुरन्त ड्योढ़ी के समीप खड़ी दूसरी मोटर में प्रधान मन्त्री का पीछा करते हुये चले गये।

पाँच

प्यार का मोल

जयकृष्णप्रसाद पहले कलकत्ते में रह कर व्यवसाय कर रहा था। उसने अपने दूर के किसी सम्बन्धी के साझे में व्यवसाय आरम्भ किया था। तब उसे व्यापार के दाँव-पेंच और पैतरों का कोई ज्ञान न था। आरम्भ में बच्चों को गड़ीरे पर चलना सिखाया जाता है परन्तु चलना सीख जाने पर गड़ीरे की सहायता की आवश्यकता नहीं रहती; बच्चे यों ही दौड़ लगाने लगते हैं। वैसे ही जयकृष्णप्रसाद एक बार व्यवसाय के क्षेत्र में कदम जमा लेने पर तेजी से स्वतन्त्र व्यवसाय करने लगा। कलकत्ते के मझले दर्जे के बाज़ार में उसके पाँव अच्छे खासे जम गये थे।

जयकृष्णप्रसाद को उसके बाल्यसखा गोवर्धनप्रसाद का पत्र मिला। गोवर्धन किसी आवश्यक काम से कलकत्ते आकर उसका अतिथि बनने वाला था। बाल्यसखा से मिलने और कुछ दिन उसके साथ निस्संकोच विनोद में बिता सकने की आशा से जयकृष्णप्रसाद का मन पुलकित हो उठा। इस पुलक में अभिमान की यह भावना भी छिपी हुई थी कि देहात में रहने वाला गोवर्धनप्रसाद उसके कलकत्ते के ढङ्ग और ठाठ देख कर कैसे अवाक् रह जायगा। ऐश्वर्य से मिलने वाला सुख और तृप्ति केवल भोग में ही नहीं होती; प्रदर्शन से भी संतोष होता है। मोटर में चढ़कर आराम से और तेज चाल से वह सुख नहीं मिलता जो कि अपनी मोटर से उड़ी धूल पैदल चलने वालों पर पड़ती देखने से होता है। जयकृष्णप्रसाद ऐसे ही गर्व की पूर्ति

की आशा से उमंग अनुभव कर रहा था। गोवर्धन को अपने ढङ्ग से चकित कर देने के लिए उसने सौ-सौ के तीन नोट निकाल कर अपने बटुए में रख लिए थे।

गोवर्धन के मानसिक विकास पर 'गोवर्धन' नाम का काफ़ी असर था, या यह बिहार के देहात का प्रभाव था कि इतनी आयु हो जाने पर भी, समय का इतना प्रवाह सिर पर से बह जाने पर भी गोवर्धनप्रसाद 'गोबर-धन' बना रहा। वह संसार को अपने कसबे से अधिक विस्तृत नहीं समझ पाया। कलकत्ते की विशालता, विस्तार और कल्पनातीत जनप्रवाह से वह प्रायः स्तब्ध रह गया।

अब जयकृष्णप्रसाद ने उसे टैक्सी में बैठा कर उन बाजारों में तेज़ी से घुमाया जहां गोवर्धन को कदम उठाने में भी आशंका मालूम होती थी, तो गोवर्धन का हृदय पल-पल पर दोमन्जिली बस और भयंकर 'हा हा' कार करती हुई ट्राम के नीचे कुचले जाने या पैदल चलने वाले लोगों को टैक्सी के नीचे कुचल देने की आशंका से धक्-धक् करने लगा।

गोवर्धन के चेहरे पर झलक आने वाले भय और आशंका को देख देख कर जयकृष्णप्रसाद को अपनी सफलता और चतुरता का महत्व अनुभव हो रहा था। दो-तीन घण्टे टैक्सी में घूमने के बाद जयकृष्णप्रसाद ने छब्बीस रुपये टैक्सी वाले की ओर किराये के बढ़ा दिये। यह देख गोवर्धन की आंखें फैली रह गईं तो जयकृष्णप्रसाद ने मित्र का कँधा थपथपाते हुये उसे सांत्वना दी—"दोस्त, यह कलकत्ता है ना!"

कलकत्ते के दो रूप हैं। यों तो कलकत्ते के कई रूप हैं परन्तु साधारणतः घूमते-फिरते समय भी कलकत्ते के दो रूप दर्शक को दिखाई देते हैं। एक रूप वह जो टैक्सी में बैठ कर चलने पर दिखाई देता है और दूसरा बस की ठेलमठेल भीड़ में किसी तरह धँस कर चलने पर देता दिखाई है। टैक्सी में बैठकर घूमने से कलकत्ता ऐसा लगता है जैसे सुरक्षित भाव में बैठा व्यक्ति नदी किनारे लगे मेले की बहार देख रहा हो। बस की भीड़ में कठिनता से पांव जमा सकने की जगह पाकर खड़े हुए व्यक्ति के कांधे और

सिर इस तरह जकड़ जाता है जैसे कंधों के ऊपर कोई बड़ा बक्सा औंधा दिया गया हो। बस की छत के सिवा और कुछ देख पाने में असमर्थ व्यक्ति तेजी से बहा चला जाता है। वह कलकत्ते को वैसे ही देखता है जैसे बरसाती नदी की बाढ़ की लपेट में आ गया व्यक्ति नदी तट के सौंदर्य को परख सकता है।

जयकृष्णप्रसाद संध्या समय गोवर्धन को लेक की सैर कराने के लिये टैक्सी पर ले गया था। लौटते समय टैक्सी सामने न दिखाई दी। वे दोनों बस पर सवार होकर लौटे। बस में सभी सीटें भरी हुई थीं। दो चार आदमी खड़े भी थे। जयकृष्णप्रसाद और गोवर्धन भी खड़े हो गये। कलकत्ता की बसों में सब सीटें भर जाने पर आठ दस आदमियों के खड़े रह कर चलने की भी इजाजत रहती है। लेकिन भीड़ के कारण प्रायः अठारह बीस आदमी भी ठसाठस खड़े होकर चलते हैं। इस खयाल से जिस बस में जयकृष्णप्रसाद और गोवर्धन चढ़े, उसमें भीड़ नहीं समझी जा सकती थी। जयकृष्णप्रसाद बस में खड़े रहते समय सहारा लेने के लिये बस की छत से लटकते चमड़े के पट्टे को थामे मजे में खड़ा था। गोवर्धन चलती मोटर में खड़े रहने का अभ्यास न रहने के कारण लड़खड़ा गया और गिरने से बचने के लिये सहारा ढूंढ़ता उसका हाथ समीप की सीट पर बैठी एक बंग रमणी के कंधे पर जा पड़ा। अवसर की बात, उसे खड़े होने को वैसी ही जगह मिली!

इससे पहले कि गोवर्धन संभल पाये, रमणी के समीप की सीट पर बैठे हुए एक बंगाली भद्र पुरुष सीना फुला कर गरज उठे—"यह क्या अभद्रता !···आदमी हो कि जानवर ?"

गोवर्धन सकपका गया परन्तु जयकृष्णप्रसाद ने बंगला में बोल कर बीच बचाव कराने के लिए गोवर्धन की ओर से क्षमा माँगी कि बदनीयती का तो कोई सवाल ही नहीं। घटना केवल पैर फिसल जाने की विवशता के कारण ही हो गई। इस पर भी बंगाली भद्र पुरुष का क्रोध शांत होने में कुछ समय लगा।

कुछ दूर चलकर दायीं ओर की सीटें खाली हो गईं और जयकृष्णप्रसाद और गोवर्धन को भी बैठने की जगह मिल गई।

बिहार के देहात से आये गोवर्धन को बिना घूँघट काढ़े, सकुचा और सिमिट कर चलने वाली, कोमलांगी कलकत्ते की रमणी के प्रति उसी प्रकार का कौतूहल हो रहा था जैसे सदा बड़े-बड़े विरूप, धूल में लिपटे और सीना फुलाकर लड़ने के लिये उतावले कुत्तों को देखने वाले देहातियों को लम्बे-लम्बे रेशमी बालों से ढँके, गोद में उठाये जाने वाले या कौच पर बैठाये जाने वाले, विस्कुटआहारी कुत्तों को देख कर होता है। वह बार-बार आंख बचा कर उसी युवती की ओर देख रहा था जिसके कि कंधे पर अचानक उसका हाथ जा पड़ा था और जिसके लिए उसे फटकार सुननी पड़ी थी। यह सोचकर कि उस रमणी की रक्षा के लिये एक व्यक्ति साथ चल रहा है, गोवर्धन के मन में युवती के प्रति अति मूल्यवान समझी जाने के कारण आदर और श्रद्धा का भाव पैदा हो गया था। वह नागरिक लावण्य के प्रति आदर, श्रद्धा और कौतूहल से ही आंखें चुरा चुरा कर उसकी ओर देखता रहा। मन ही मन उसने समझ लिया—यह है कलकत्ते के बड़े शहर की, बड़े घर की औरत !

गोवर्धन की सीट उस रमणी की सीट के दाईं ओर बिलकुल सामने होने के कारण वह उसकी नजरों में ही थी। गोवर्धन भय का पुट लिए वैसे ही आदर से उस रमणी को देख रहा था जैसे समझदार बालक पूजा के लिए बनी झांकी को देखता है, उसे छू देने से बिखर या टूट जाने की आशङ्का से सहमा हुआ। उसके विचित्र केश-विन्यास को, चेहरे पर हलकी ओस की सी सफेदी को, माथे पर बनी विचित्र बिन्दी को, होंठों पर लालिमा को, बड़ी बड़ी आंखों के कोनों से कानों तक खिंची आंखों की नोकों को। स्त्री को ऐसे कोमल शरीर और आदरणीय रूप में उसने कभी नहीं देखा था। कुछ दूर जाने पर गोवर्धन को युवती के अपनी ओर से दिखाई देने वाले गाल पर कुछ निशान से दिखाई दिए। इन निशानों के प्रति गोवर्धन अपना कौतूहल न दबा सका। समीप बैठे मित्र की बांह दबा उसने दबे स्वर से अपनी देहाती बोली में पूँछ ही तो लिया। —"इसके गाल पर यह निशान कैसे हैं ?"

जयकृष्ण ने ध्यान से देखा और दबे स्वर में ही समझाया।— "पागल है ? और काहे का निशान है ?......पांचों उंगलियों की चपत का निशान है। साफ़ तो दीखता है।"

गोवर्धन के मन में सहानुभूति और करुणा की उमड़ आई। उसे खयाल आया ऐसी कोमल और सुसंस्कृत नारी पर भी चपत पड़ सकती है। उस रमणी के प्रति आदर के विचार से गोवर्धन ने उस ओर से आँखें हटा लीं और बहुत देर तक मन ही मन यही सोचता रहा; इस विशाल नगर की विशाल अट्टालिकाओं में ऐसी ही असंख्य आदरणीय कोमल रमणियाँ भरी होंगी। इतने आदर में चपत पड़ने पर वे सहम कर चुप रह जाती होंगी! देहातिन की कांय-कांय की तरह से छप्पर सिर पर न उठा लेती होंगी?

चौरंघी पर आकर जयकृष्णप्रसाद के इशारे पर गोवर्धन भी बस से उतर गया। बड़ी-बड़ी दूकानों के सामने संध्या समय हो गई चकाचौंध रोशनी में घूमते हुए जयकृष्ण ने प्रस्ताव किया—"चलो, तुम्हें कलकत्ते का रंग दिखायें।"

वह गोवर्धन को बांह से थामे "एवरग्रीन बार" में ले गया। बिजली की रोशनी से जगमग लम्बे से कमरे में जगह-जगह लोग मेजों को घेरे हुए कुर्सियों पर बैठे थे। उनमें कितनी ही स्त्रियां थीं जो मर्दों की बगल में बैठी कह-कहे लगाती हुई चुहल कर रही थीं। गोवर्धन के लिये यह दृश्य कल्पनातीत था। वह इन स्त्रियों को समझ नहीं पा रहा था। पहनने ओढ़ने, चेहरे की कोमलता और केशविन्यास से ये सब शहर के सम्मानित बड़े लोगों की मेम साहिबा ही जान पड़ती थीं परन्तु उनका व्यवहार था मर्दों से भी बढ़ कर निस्संकोच! गोवर्धन विस्मित था। कलकत्ते में यह कैसी स्त्रियां हैं जिन्हें संकोच और भय नहीं?

जयकृष्णप्रसाद ने ह्विस्की के दो पेग मंगवाये और उस में सोडा मिला कर एक गिलास गोवर्धन की ओर बढ़ाकर कहा—"बेटा, यह बिलायती ताड़ी चखो!"

अपने देहात में गोवर्धन घर और बिरादरी के बड़े बूढ़ों की नजर बचा कर कई बार ताड़ी चख चुका था इसलिए मित्र के साथ इस अपरिचित जगह में शराब पी लेने में उसे कोई आपत्ति न थी। शराब के नशे से अधिक फुरफुरी उसे हो रही थी, उन स्त्रियों को देख कर!

"यह कैसी औरतें हैं?"—गोवर्धन मित्र से पूछे बिना न रह सका।

"देख लो सामने ही तो है! ...कैसी होती हैं औरतें ?"—मुस्कराकर जयकृष्णप्रसाद ने उत्तर दिया।

कुछ देर बाद जयकृष्णप्रसाद ने गोवर्धन को कोंचा दिया—"क्यों पसन्द है कोई ?...बात करोगे ?"

मित्र की मुस्कराहट से गोवर्धन ने अपने मस्तिष्क पर जोर देकर समझा कि शराबखाने में हंसी-ठिठोली करने वाली औरतें कैसी हो सकती हैं ? मित्र के साथ एक ओर बैठा हुआ वह इस अद्भुत दृश्य को देख रहा था। उन निस्संकोच युवतियों से आंख मिल जाने पर उसे असुविधा अनुभव होने लगती।

गोवर्धन अपनी बायीं ओर की मेज पर दो आदमियों के बीच हरी साड़ी पहने बैठी एक युवती को बारबार देख रहा था। उसके अट्टहास से गोवर्धन का ध्यान कई बार आकर्षित हो चुका था। फिर अट्टहास सुन गोवर्धन की आंखें उसकी ओर गयीं। गोवर्धन ने देखा कि युवती के दायीं ओर बैठा व्यक्ति उसे पांच रुपये का एक नोट उसे दिखा रहा है। युवती ने पांच रुपये के नोट के उत्तर में अंगूठा दिखा दिया और उस मर्द की कमीज की जेब से दस-दस के दो नोट खींच लिए। मर्द ने अपने नोट वापिस छीन लेने के लिए हाथ बढ़ाया। युवती उसके हाथ की पहुंच से बचने के लिए दूसरी ओर झुक, नोटों को अपने ब्लाउज में खोंसती हुई मुस्करा दी।

नोट छिनाने वाला व्यक्ति यह सीना जोरी सह जाने के लिए तैयार नहीं था। उसने दूसरे हाथ से युवती की बांह पर जोर से चिकोटी काट ली।

युवती के मुंह से चीख सी निकल गई "उफ़" ! उसके माथे पर बल पड़ गये। सहसा उसका थप्पड़ चिकोटी काटने वाले व्यक्ति के मुंह पर जा पड़ा। दूसरे हाथ से उसने नोटों को मर्द के मुंह पर फेंक दिया।

बार का मैनेजर और दो एक बैरे "क्या है ?" क्या है ? कहते हुए उस मेज पर आ गये, उन लोगों ने बीच बचाव कर स्थिति शांत करने के लिये युवती को वहां से उठा दिया।

वह युवती उठ कर दूसरी मेज पर जा बैठी और आवेश में जल्दी-जल्दी सांस लेती हुई चिकोटी काटने वाले व्यक्ति की ओर ऐसे घूरने लगी जैसे मार खाई हुई बिल्ली आक्रमण करने वाले की ओर देखती है।

जयकृष्णप्रसाद ने एक ही घूंट में अपना शेष गिलास समाप्त कर गोवर्धन को भी गिलास समाप्त कर उठने का संकेत किया।

बाहर आ जयकृष्ण अपने मित्र से बोला—"चलो चलो यहां से। झगड़ा-बखेड़ा हो तो बैठने से क्या फायदा ?"

बाहर आ कर भी गोवर्धन के मस्तिष्क पर उस दृश्य के आघात से छा गई मूढ़ता कम न हो पाई। उसे ऐसा जान पड़ रहा था जैसे औरत का थप्पड़ उसके ही मुंह पर आ पड़ा हो ?

जयकृष्ण की बाँह दबा वह फिर पूछ बैठा-"देखी इस बदमाश औरत की हिम्मत ? और एक वह थी, बेचारी भले घर की शरीफ औरत बस में ?"

मित्र की मूर्खता पर उपेक्षा से हंस जयकृष्ण ने समझाया—"इस हरामजादी को कौन कोई उम्र भर का सहारा देने वाला है जो चुपके से मार खा जाय !"

ॐ:

शहनशाह का न्याय

शहनशाह बहुत न्याय प्रिय थे।

दरबार में उनके मुसाहबों ने जिक्र किया - "… जहाँपनाह बहुत न्यायप्रिय हैं।"

यह बात सुन कर जहाँपनाह को वह सुख हुआ जो अनेक नाज़ों की लहरों पर बहती संगीत की नाव में बैठ बेसुध हो जाने पर भी न हो सकता; जो 'शीराजी' के प्यालों से उत्तेजित हो बेगम नूरेहरम की आंखों के नीले आकाश में स्वच्छन्द पर फैला कर उड़ानें भरने से भी न हो सकता था। उन्हें अनुभव हुआ, वे एक ऐसी हस्ती हैं जो कोई दूसरा शख्स नहीं हो सकता। उनके इस गुण के कारण उनके संसार से चले जाने पर भी लोग उन्हें याद करते रहेंगे। वे सदा अमर रहेंगे!

शहनशाह न्याय प्रिय तो थे ही। उन्होंने और भी अधिक और व्यापक गहरा न्याय करने का निश्चय कर लिया। निश्चय किया कि कोई भी गरीब-गुरबा उनके न्याय से वंचित न रह सके। उनकी प्रजा को अन्न मिले या न मिले! न्याय जरूर मिले! अन्न देना काम मौला का, न्याय करना काम राजा का। मौला अन्न दे या न दे, राजा न्याय करेगा!

आदिल (न्याय प्रिय) शहनशाह ने सोचा, यों तो इंसाफ़ करने के लिये उनकी तरफ़ से मुल्क भर में क़ाज़ी, मुल्ला और दारोगा (नौकरशाही के अनेक रूप) तैनात हैं, मगर ये काजी,

मुल्ला और दारोगा भी तो आखिर इंसान हैं। स्वार्थ और पक्षपात उनके भी मन में आ सकता है। वे अन्याय कर सकते हैं। लेकिन प्रजा को न्याय मिलना चाहिए। काजी, मुल्ला और दारोगाओं के अन्याय से प्रजा को बचाना बादशाह सलामत का फ़र्ज है!

शहनशाह जानते थे कि उनके हुजूर में पहुँच पाना सर्वसाधारण के लिये सहल नहीं। राजमहल की ड्योढ़ी से लेकर उनके दरबार तक सैंकड़ों सशस्त्र सिपाही पहरे पर तैनात रहते हैं। सैंकड़ों ख्वाजासरा तलवारें खींचे उन के हरम की ड्योढ़ियों पर मुस्तैद हैं। इसलिये शहनशाह ने हुक्म दिया कि महल में उनकी आरामगाह की खिड़की से नीचे ज़मीन तक एक बड़ा घण्टा लटका दिया गया।

शहर में बादशाह सलामत के हुक्म से डौंडी पिटवा दी गई—"हुक्म खुदा का, मुल्क बादशाह का! हर खासो-आम को इत्तला दी जाती है कि साहबेआलम, जहांपनाह, शहंशाहेमुअज्जम के आरामगाह की खिड़की से एक घंटा लटका दिया गया है। जिस किसी बशर को इन्साफ़ तलब हो, इस घंटे को बजा कर साहिबेआलम के हुजूर में अपनी फ़रियाद पहुँचा सकता है।"

शहनशाह की नौकरशाही, काज़ियों, मुल्लाओं और दारोगाओं ने जहांपनाह का यह ऐलान सुना और वे चिंतित हो गए। उन्होंने प्रधान काज़ी के सम्मुख जा कर दुहाई दी—"अगर इंसाफ़ जहांपनाह खुद करेंगे तो काज़ी, मुल्ला और दारोगा क्या करेंगे?"

प्रधान काजी मुस्करा दिए। उन्हें अपनी मातहत 'नौकरशाही' की बुद्धि पर तरस आया। वे बोले—"बादशाह के न्याय का घंटा बजाने देने का मौका किसके हाथ में है?......इस घंटे की रक्षा करना किसका कर्तव्य है?...बादशाह सलामत की नौकरशाही का!" बादशाह सलामत देश की रक्षा करते हैं इसलिये देश के मालिक हैं। बादशाहसलामत की नौकरशाही बादशाह सलामत की जान और उन के घंटे की रक्षा करती है इसलिए......, समझ लो!"

शहर भर के काजियों, मुल्लाओं और दारोगाओं ने प्रधान

काजी की बुद्धिमानी और नीतिज्ञता को स्वीकार करने के लिये सिर झुका कर उन्हें आदाब किया।

बादशाह सलामत के हुक्म से न्याय की पुकार के लिए लट-काए गए घंटे की रक्षा के लिए सशस्त्र सिपाही तैनात कर दिए गये। शहनशाह आरामगाह में बेगम नूरेहरम के हाथ से बिल्लौरी प्यालों में बरफ से ठंडी 'गम अर्गवानी' और 'शीराजी' पीते हुए अपने न्याय के घंटे की टंकार सुनने के लिये प्रतीक्षा करते रहते। दिन बीते, हफ्ते बीते और महीने बीत गये। न्याय के घंटे ने न्याय के लिए दुहाई न दी। बादशाह सलामत को संतोष होता गया कि उनके राज्य में अन्याय नहीं।

× × ×

एक दिन बुधवा धोबी संध्या समय अपने बैल पर घाट से लादी लेकर घर लौटा था। थकावट से चूर होने के कारण बैल को खूंटे से बांधने से पहले खाट पर बैठ गया। बैठा तो ऊंघ आ गई। अवसर से मिली इस स्वतंत्रता का लाभ उठाने के लिये बुधवा का बैल जिधर मुंह उठा, चल दिया। बैल चलता हुआ एक मंडी में जा पहुंचा। मंडी में एक दूकान के आगे रखी गुड़ की भेली पर उसने मुंह मारा। बनिये ने यह अन्याय देख बैल के मालिक को गालियाँ दे दो लाठियां बैल की पीठ पर जोर से जमा दीं।

बैल कुछ दूर आगे दौड़ा। किसी रईस के अस्तबल में घोड़े के लिये रखी हरी दूब देख बैल की जीभ दूब का रस लेने के लिए मचल गई। यह देख रईस के नौकरों ने चाबुकों और कमचियों से बुधवा के बैल का सत्कार कर उसे आगे रास्ता दिखा दिया।

बुधवा का बैल अवसर से पाई स्वतंत्रता का आनंद लेता, गलियों और बाजारों की सैर करता चला जा रहा था। जगह-जगह उसकी पीठ पर छड़ियां और लाठियां बरस कर निशान बनते जा रहे थे। बैल चलता चलता शहनशाह के महल के नीचे आ पहुंचा। बादशाह के आरामगाह की खिड़की से लटकता घंटा उसे दिखाई दिया। अंधेरे में घंटा बैल को गुड़ की भेली सा जान पड़ा। वह उसकी ओर बढ़ने लगा।

न्याय के घंटे की रक्षा के लिए तैनात सशस्त्र सिपाही आस-

पास बैठे ऊँघा रहे थे। वे न्याय की दुहाई देने वाले मनुष्यों से घंट की रक्षा कर रहे थे। पशुओं से उन्हें कोई आशंका न थी।

बुधवा का बैल गुड़ के लोभ में घण्टे की ओर लपका। उसका मुंह लगने से घंटा बज उठा। चौकसी के लिये तैनात ऊँघाते हुए सिपाही आशंकित हुए परंतु इतने में आरामगाह की खिड़की के सामने घंटे की टंकार सुनने के लिये तैनात चोबदार पुकार चुका था--"कौन है जहांपनाह, साहबेआलम के हुजूर में इंसाफ की फ़रियाद करने वाला? फ़रियादी को हाजिर किया जाए।" अब बैल को खदेड़ कर भगा देने का अवसर न था।

न्याय प्रिय शहनशाह शराब के जोम में झूमते हुए दूनी तत्परता से न्याय करने के लिये उठ बैठे। फरियादी की जगह जब उनके सामने एक बैल पेश किया गया तो बादशाह सलामत को कुछ ताज्जुब हुआ। उन्होंने अपनी आंखें मलकर ध्यान से देखा—बैल तो बैल ही था। लेकिन फिर खयाल आया कि साहबेआलम की सल्तनत के पशु भी तो उनकी प्रजा हैं और उनके साथ भी न्याय होना चाहिए।

शहनशाह ने बैल को हुक्म दिया—"फ़रियाद करो!"

बैल को चुप देख शहनशाह के मन में विचार आया कि बैल तो बेजुबां है। बेजुबां रिआया की फ़रियाद समझना उनका अपना फ़र्ज़ है। उन्होंने फिर आंखें मलीं और गौर से बैल की ओर देखा। बैल के शरीर पर पड़ी लाठियों के चिन्ह बादशाह सलामत को दिखाई दिए। वे बैल की न्याय के लिए दुहाई का कारण समझ गए।

बादशाह सलामत ने अपने शहर-कोतवाल (नौकरशाही) को हुक्म दिया—"बैल के मालिक की तलाश करके उसे इन्साफ़ के लिए मायदौलत के हुजूर में हाजिर किया जाय!"।

बादशाह के फ़रमाबरदार शहर-कोतवाल ने मुस्तैदी से बैल के मालिक बुधवा धोबी को तलाश कर बादशाह सलामत के हुजूर में फ़ौरन पेश कर दिया।

बादशाह सलामत ने अपराधी बुधवा धोबी को सम्बोधन किया—"तुम्हारे बैल ने मायदौलत के हुजूर में बेरहमी से पीटे जाने की फ़रियाद की है!"

फिर बादशाह सलामत ने शहर कोतवाल को संबोधन किया—"इस बैल की पीठ पर कोड़ों के जितने निशान हों, गिन कर उतने ही कोड़े बैल के मालिक बुधवा धोबी को शहर के चौक में खड़े करके लगवाए जायं।"

बुधवा धोबी सजा का यह हुक्म सुन कांप उठा। उसने ज़मीन पर सिर रख कर दुहाई दी—"जहांपनाह, मैं तो अपने बैल को फूलों से पोंछ कर रखता हूं। मैंने उसे नहीं मारा। कोई गवाह कह दे, उसने मुझे बैल को मारते देखा हो!"

अपने इन्साफ़ पर अभियुक्त के एतराज़ करने का दुस्साहस करते देख शहनशाह को ताज्जुब हुआ लेकिन इन्साफ़ का ख्याल कर थम खा गए और इर्शाद फ़रमाया—"ऐ नादान बशर (भोले आदमी) माबदौलत के इन्साफ़ पर उज्र करने की तुम्हारी जुर्रत से माबदौलत को ताज्जुब है। माबदौलत के इन्साफ पर रियाया का उज्र करना ही सबसे बड़ा जुर्म है। जब वालिए-सल्तनत (सरकार) रियाया पर खुद इल्ज़ाम लगाएं तो गवाह और सुबूत की ज़रूरत नहीं होती। हमारे कोतवाल ने तुम्हें गिरफ्तार किया है। माबदौलत ने तुम्हें सज़ा का हुक्म दिया है इसलिये तुम इन्साफ़ में कसूरवार हो!"

शहर-कोतवाल बादशाह का हुक्म पूरा करने के लिये बुधवा धोबी की मुश्कें बांध कर ले गए।

जब साहबेआलम अपनी आरामगाह पर वापस लौटे तो बेगम नूरेहरम ने न्याय उन्हें की तत्परता के लिये बधाई दी। बादशाह बेगम के हाथ से शराब का नया जाम स्वीकार करते हुए संतोष से बोले—"बेगम, आज दुनिया ने देख लिया कि माबदौलत के अदल में इन्सान तो क्या, जानवर के साथ भी न्याय किया जाता है!"—और शहनशाह ने न्याय स्थापना के परिश्रम की थकान में और न्याय करने की सफलता के आश्वासन में शराब का प्याला एक घूंट में पी लिया।

सात

स्थायी नशा

सन् १९४२ में अंग्रेजों के विरुद्ध 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भाग लेने के कारण जेल काट कर छूटा तो दाजू ने परिवार के प्रति उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में एक प्रभावशाली व्याख्यान देकर समझाया—"·····जो आदमी इस लड़ाई के ज़माने में भी नहीं कमा सका, वह दुनिया में कभी कुछ नहीं कर सकेगा !···रुपया तो बरस रहा है। कोई समेटने के लिये झोली भी न पसार सके तो उसे क्या कहें ?"

"कोई मौके को ठुकराता ही जाय तो मौका ही उसके पीछे कहां तक दौड़ेगा ?"—दाजू ज़ोर देकर बोले—"तुम्हें देश का काम करने से कोई नहीं रोकता लेकिन देश का काम करने लायक तो हो जाओ !···तुम नकल करते हो बड़े-बड़े लीडरों की ! अरे उनकी और तुम्हारी बराबरी क्या ? वे लोग सौ-पचास का पेट भर, उन्हें अपने साथ लेकर चल सकते हैं और तुम हो, अपनी ब्याही औरत को ही दूसरों की मुहताज छोड़ कर देश की सेवा करने चले हो ? ···जो अपने घर का कुछ नहीं बना सकता, वह देश का क्या खाक बनायेगा ?"

और फिर दाजू ने सांत्वना दी—तुम्हें करने को कहता ही कौन है ? तुम हमारे साथ तो बने रहो। बस देख-भाल में साथ देते रहो। आलू के परमिट के लिये दरख़ास्त दे दो। आलू न ढोना चाहो तो परमिट ही बेच डालना ! हज़ार-बारह सौ उसी में बच जायेंगे।"

युद्ध के समय रुपये की उस बरसात में, इतनी आसानी से, परमिट मात्र ले लेने से हजार-बारह सौ प्रति मास बन जाने की आशा ने यह विश्वास दिला दिया कि उचित रूप से देशभक्ति कर पाने के लिये, अर्थात कांग्रेस में कोई अधिकारपूर्ण स्थान पा सकने के लिये हाथ में कुछ रुपया होना अच्छा ही है। रुपये की आवश्यकता किस काम में नहीं पड़ती? अगर नेताओं को एक तार ही देना हो अथवा नेताओं से मिलने के लिये लखनऊ जाना पड़ जाय; या एक सभा करने के लिये डोंडी ही पिटवानी हो तब भी रुपए के लिए हाथ पसारना ही पड़ता है। ऐसे समग्र सभा का हो सकना और न हो सकना, इस कार्य के लिए रुपया दे सकने वाले पर ही निर्भर रहता है।

एक बात यह भी थी कि जितने उत्साह से 'कर! या मर!' की भावना से आँदोलन में भाग लेकर हम लोग जेल गये थे, जेल में मिलने वाले समाचार पत्रों से और जेल से छूटने के बाद नेहरूजी, पंतजी और मौलाना आजाद आदि नेताओं; के वक्तव्य पढ़ने से यही मालूम हुआ कि १६४२ की हमारी क्रांति, "कांग्रेस के नेताओं का आदेश नहीं थी। बल्कि नेताओं के अभाव में अंग्रेज सरकार के उत्तेजना दिलाने पर देश के गुमराह नौजवानों का अनियंत्रित उत्साह मात्र था।" अनुत्साहित करने वाले इतने अधिक कारणों से घिर कर दाजू के साथ 'रानीखेत' जा आलू का परमिट ले कुछ कारोबार कर लेना ही उचित समझा।

परमिट पाने के लिए पंडित जी की मार्फ़त बात होनी थी। उन्होंने सूर्यास्त के पश्चात् साढ़े-सात बजे आने को कहा था। कारोबार के नये-नये उत्साह में मैं पंडित जी के यहाँ ठीक समय पर पहुँच जाने के लिए उत्सुक था परन्तु दाजू मनुष्य के प्रयत्न की अपेक्षा भगवान की पूजा और कृपा में ही अधिक विश्वास रखते हैं। सवा-सात बजे वे अपनी संध्या समय की पूजा अर्थात् पाठ करने के लिये मकान के सामने तख्त पर बैठ गये। मिनट पर मिनट गुजरते जा रहे थे परंतु दाजू का पाठ समाप्त होने में नहीं आ रहा था। पाठ समाप्त किये बिना दाजू का पूजा पर से उठ जाना उतना ही कठिन था जितना कि रानीखेत की पहाड़ी का अपने स्थान से उठ कर लखनऊ पहुँच जाना।

मैं बेचैनी और उतावली में दाजू के मकान के सामने चहल-कदमी करता हुआ उनकी का पूजा-पाठ समाप्त होने की प्रतीक्षा कर रहा था। दाजू को पूजा समाप्त करने की कोई जल्दी नहीं जान पड़ती थी। उन्हें अपने मन्त्रबल पर इतना विश्वास है कि सम्पूर्ण संसार को उनकी पूजा समाप्त होने की प्रतीक्षा करनी ही होगी। सुविधा से पूजा करते-करते आये-गये आदमी से दो चार आवश्यक बातें कर लेने में भी दाजू को कोई आपत्ति नहीं होती।

पूजा करते-करते दाजू ने सड़क से गुजरते बेचैनसिंह को पुकार कर उसकी बीमार माँ का हाल-चाल पूछ लिया और पूजा चलती रही। फिर जगधर पांडे को सामने से जाते देख उसके कारोबार का हाल-चाल पूछ कर उसकी समृद्धि के लिए शुभ कामना भी प्रकट कर दी और पूजा चलती ही रही। दाजू पूजा के प्रति अपनी निष्ठा के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्हें पूजा करते जितने भी आदमी देखें, उनकी पूजा का महत्व बढ़ता ही है।

दाजू की पूजा चली ही जा रही थी और मैं मन ही मन कुन-मुनाता हुआ मकान के सामने चहलकदमी किए जा रहा था। उसी समय 'खलासी बाज़ार' से ऊपर आने वाली एक गली से हरजू और नथिया एक दूसरे के गले में बाहें डाले चले आते दिखाई दिये। समीप ही हलवाई की दुकान पर जलता गैस के तीव्र प्रकाश में उनकी अस्थिर सी आँखों, चेहरे पर दिखाई पड़ने वाले तनाव और डगमगाती चाल में गहरे नशे का प्रभाव दिखाई दे रहा था।

समझ में आया कि दोनों 'नहो' (नीचे) के ठेके से खूब छक कर पिये चले आ रहे हैं। अपने शौक के लिये दोनों बाज़ार में बहुत दिन से प्रसिद्ध हैं। इस शौक के परिणाम-स्वरूप बहुत कुछ भुगत लेने पर भी वे अपने इस आत्मिक या मानसिक सुख का अधिकार छोड़ देने के लिए तैयार नहीं। समीप आने पर हरजू की नाक में गुनगुनाती सी आवाज सुनाई दी:—

"मैं सच कहता हूँ भाई……" —वह प्रश्न की मुद्रा में हाथ उठा कर बोला—"तू क्या जानता है? मैं तो तुझे अपने बाप की जगह समझता हूँ! सच मान तू, हाँ!"

नथिया ने हरजू के कंधे पर रखी अपनी बांह से उसे अपनी ओर समेट कर मोह से विरोध किया—"अबे यह कैसे हो सकता है ?··· हैंहे, हेहे, हेहे, तू क्या जाने ? मैं तुझे हमेशा से अपना बाप समझता आया हूँ बे ! तू है मेरे बाप की जगह !"

नथिया के विरोध की उपेक्षा कर हरजू ने लरजती हुई आवाज़ में अपने अधिकार पर फिर आग्रह किया—"नहीं यार ! कैसी बात कर रहा है तू ?···ऐसा कहीं हो सकता है ?···तू हमेशा से मेरा बाप है !"

नथिया ने हरजू के आग्रह को अस्वीकार किया—"अबे तुझ से कह दिया सं बार···तू है मेरे बाप की जगह।"

नथिया के कंधे पर रखी हरजू की बाँह तन गई। नथिया को अपनी ओर खींचने के बजाय दूर ढकेल कर हरजू ने लाल आँखों से उसकी ओर देख गुर्राहट से धमकाया—"अबे साले, तुझ से कह तो दिया हजार बार कि तू है मेरे बाप की जगह !"

उसकी गुर्राहट की उपेक्षा नथिया ने नहीं की। उसने मित्र के गले में पड़ी अपनी बाँह खींच उसके कुर्ते का गिरेबान झटक कर चुनौती दी—"अबे हरामी, तू कौन होता है मुझे बाप बनाने वाला ? तू है मेरा बाप !"

हरजू ताव में आ गया—"तेरी माँ का······"—और उसका थप्पड़ तड़ से मित्र के मुँह पर जा पड़ा। उस प्रहार के उत्तर में नथिया ने हरजू की टाँग के नीचे हाथ डाल उसे चौड़े पत्थरों के फ़र्श पर पटक दिया और उसकी बहिन से बलात्कार करने की घोषणा कर धमकाया—"साले·······तू है मेरे बाप की जगह !"

दोनों में गुत्थमगुत्था होने लगी। कोई भी दूसरे को अपना बाप मानने की प्रतिज्ञा को छोड़ने के लिये तैयार नहीं था। पकौड़ा की दूकानों से भलेमानुस दौड़ पड़े। भलामनसाहत के नशे के गर्व में यह लोग ठर्रे के नशे से बेसुध हरजू और नथिया की माँ बहनों से अनुचित व्यवहार करने के इरादे की घोषणा ऊँचे स्वर में करते हुए उन्हें एक दूसरे से पृथक करने की चेष्टा करने लगे।

भलेमानुस लोग ललकार रहे थे—"इनकी माँ का······! दोनों हरामियों को थाने पहुँचाओ ! ये बहन··· छः छः महीने जेल की

हवा खा आयें तो इनका दिमाग़ ज़रा ठीक हो !"

जेल भेजे जाने की इस धमकी का भी असर नथिया और हरजू के नशे पर न हुआ। नथिया हरजू को और हरजू नथिया को अपना बाप बना लेने की प्रतिज्ञा ऊँचे स्वर में दुहराये ही जा रहे थे।

गली में मच गये इस कोहराम की भी उपेक्षा दाजू नहीं कर सके। अपनी पूजा में एक अल्प विराम देकर उन्हों ने उन दोनों मूर्खों को, उनकी माँ-बहनों के सम्बन्ध में एक-एक काफ़ी बोझल गाली दे कर समझाने का यत्न किया—"दोनों नशे में पागल हैं। समझते भी हैं कि क्या बक रहे हैं ?"

दाजू की इस बात से मेरा ध्यान दाजू के मंत्रपाठ और पूजा की ही ओर चला गया कि वे ही जो कुछ मुंह से उच्चारण कर रहे हैं, उसका अर्थ और प्रयोजन कितना समझ पा रहे हैं ? और सोचा, हरजू और नथिया तो घंटे-डेढ़ घंटे में ठर्रे की अस्थायी झोंक हवा हो जाने पर अपने व्यवहार के लिये लज्जा भी अनुभव करने लगेंगे और इस घटना की याद से उन्हें संकोच भी होगा परन्तु दाजू का यह स्थायी नशा ?

परन्तु ऐसी बात तो कोई भला आदमी पूजा और मंत्रपाठ के सम्बन्ध में कह नहीं सकता; कहे भी कैसे ?···नशे के लिए लज्जा और पश्चाताप तो नशा टूटने पर ही अनुभव होता है।

मैं कुछ कह ही कैसे सकता था ? मेरे मन में तो अभी दाजू की सहायता से आलू का परमिट पाने की आशा शेष थी ! इसी-लिए सुबुद्धि ने चुप रह जाने का ही परामर्श दिया।

आठ

एक सिगरेट

दमती ब्राह्मणी है परन्तु छोटी जात की। छोटी जात इसलिए कि ब्राह्मण हो कर भी उसके घर के लोग हल जोतते हैं। कठिन श्रम और धरती के मैल से उनके शरीर कलुषित हो गये हैं। धूल और मैल से नित्य का सम्पर्क होने के कारण इन परिवारों का व्यवहार और भाषा भी मलीन हो गई है। वे मान और आदर खो बैठे हैं। यदि इन ब्राह्मणों को जीवन निर्वाह के लिये कठोर और मैला श्रम न करना पड़ता तो उनकी वंश-परम्परा में व्यवहार और भाषा की पवित्रता भी बनी रहती और उनके सामाजिक सम्मान के अनुकूल उनकी बेटी का नाम दमती न होकर दमयन्ती होता।

बद्रीनाथ धाम की यात्रा के मार्ग में 'कर्णप्रयाग' और 'रुद्र-प्रयाग' के बीच, सड़क से पाँच-छः मील हट कर दमती की ससुराल है। है क्या,......कहिये थी! ब्याह तो उसका तभी हो गया था जब वह ग्यारह-बारह बरस की थी। ब्याह के बाद भी वह डेढ़-दो बरस मायके में ही बनी रही। जब दमती का दूल्हा बजदत्त (वज्रदत्त), निम्न आर्थिक श्रेणी के दूसरे गढ़वाली नौजवानों की मर्यादा के अनुसार, रंगरूट भरती होने के लिये 'लैन्सडाउन' जाने लगा तो बहू को अपने प्रौढ़ माता-पिता की सहायता के लिये उसके मायके से घर ले आया। नौजवान एकलौते बेटे के माँ-बाप का बुढ़ापा कुछ असाधारण-सा लगता है परन्तु बात ऐसी ही थी। बजदत्त से पहले उसके माता-पिता के एक लड़की और फिर छः वर्ष के अन्तर से दूसरी लड़की हुई थी। पहली लड़की ब्याह की उम्र से

पहले ही मर गई। दूसरी लड़की भी जब पूरे आठ बरस की हो गई तभी भगवान ने नरान्दत्त (नारायणदत्त) को पुत्र का मुंह दिखाया। इसलिये बजदत्त जब रंगरूट होने लायक पट्ठा हुआ तो उसके माँ-बाप जवानी की पहाड़ी की चोटी लाँघ दूसरी ओर की ढलवान पर काफ़ी उतर चुके थे। धरती से लड़-झगड़ और लाड़-प्यार कर अन्न उपजाने के कठिन काम में पुत्र के दूर रहते उन्हें बहू का बहुत सहारा था।

दमती थी भी ऐसी ही बहू। सास की हर पुकार पर उसका एक ही उत्तर होता—"आई; अम्मा!" ऐसी बहू पाकर बजदत्त की माँ को थकान भी अधिक होने लगी। वह अपने हाथ के काम धीरे-धीरे बहू के लिये छोड़ने लगी। सास प्रायः कहती रहती—"जाने क्यों?''''बदन गिरता ही जा रहा है।" दमती ढोरों के लिये घास, रसोई के लिये ईंधन और पानी लाती, खेत में खाद फेंकने जाती और इस सब से फ़ुर्सत पाती तो सास की लातें और कमर भी दबा देती।

दमती की सास के शरीर में कुछ ऐसे या वायु का प्रकोप रहता था। कभी दाँत दर्द करने लगते, कभी चेहरे का कोई भाग या आँखें सूज जातीं, कभी पेट में वायु का गोला-सा बन जाता। लोग इसके इलाज के लिये तम्बाकू के धुएं का दम लगा लेने की सलाह देते; परन्तु औरत, तिस पर ब्राह्मण की जात! तम्बाकू पिये तो लोग क्या कहेंगे? यह डर भी तो था! जो हो, कष्ट का इलाज भी करना था। सास ने दमती को समझाया कि अपने काका (ससुर) की पुरानी, छोटी गुड़गुड़ी के नारियल में पानी बिना डाले चिलम में तम्बाकू और आग रख लाया करे। सास ओबरी (भीतर की अंधेरी कोठरी) में बैठ चुपके से दम लगा लेती। दमती सास के यह सब रहस्य भी निभाये आ रही थी।

ससुराल आकर दमती के शरीर की उठान खूब उभर आई थी। शरीर की बाढ़ और उभार पूरा हो गया तो उसमें जोबन और छवि आने लगी; जैसे फल का आकार पूरा हो जाने पर उसमें रस और रंग आने लगता है। उसके चेहरे पर लुनाई और आँखों में चमक आ गई। बजदत्त पिछले बरस, सिपाहियों की अट्ठाइस दिन की छुट्टी पर आया, तो लौटते समय मन ऐंठ-ऐंठ कर रह

गया। दमती की चाह उसके मन में ऐसी बस गई थी कि छावनी में लौटने पर पांव हरदम अपने गांव की ओर उठने के लिये मचलते रहते। उसने पलटन में सिगरेट पीना सीख लिया था। लम्बे-लम्बे कश खींच, चुटकी बजाकर राख झाड़ कर वह अपने मुंह से निकले सिगरेट के धुयें में अपनी बहू की कल्पना करने लगता। यह सिगरेट के कश क्या, ये दमती के लिए आहें थीं।

बजदत्त ने कम्पनी के सिपाहियों से तिकड़म लगा, अपनी छुट्टी बारी से पहले ही, यानी नौ महीने बाद ही करवा ली। लैंसडाउन से चलते समय इस बार उसने टीन के फूलदार छोटे ट्रंक में बाप के लिये एक जोड़ा पुराने फौजी बूट, माँ की अंडी के लिये एक टुकड़ा मोटा कपड़ा और दमती के लिये केले के रेशम की, धूप-छांव रंग की एक खूब चमकदार साड़ी, चाँदी के झुमके, सुरमादानी और ऐसी ही कुछ और चीज़ें भी रख लीं। छावनी में सड़क के किनारे परदा खड़ा कर के सन्दूक-जैसे कैमरे से फोटो खींचने वाले पंजाबी से बजदत्त ने चार आने में अपना एक छोटा-सा फोटो भी बनवा लिया था। उसे तो केवल अट्ठाइस दिन घर में रह कर फिर छावनी में लौट आना था। सोचा, बहू को फोटो दे आयेगा। बहू फोटो देख-देख कर उसे याद करेगी! इस कल्पना से उसे संतोष होता। छावनी में बहू की याद आती थी तो वह सिगरेट से लम्बे-लम्बे कश खींचा करता। सिगरेट के धुये से सिर घूम जाता तो बहू के साथ होने की कल्पना करने लगता। उसके मन में था कि घर आयगा तो ऐसे ही कश लगाकर बहू को बांहों में ले प्यार करेगा।

बजदत्त के छुट्टी पर जल्दी आ जाने से मां-बाप को अच्छा ही लगा था परन्तु जब इस बार लड़के ने पिछले बरस से आधी ही कमाई उनके हाथ में रखी तो इसका सम्बन्ध वे उसके छुट्टी पर जल्दी आ जाने से नहीं लगा सके। बजदत्त एक तो इस बार नौ ही महीने की ही तनख्वाह पाकर आया था दूसरे उसी तनख्वाह में से मां-बाप के लिये कुछ सामान और दमती के लिये साड़ी, चाँदी के झुमके और दूसरी चीज़ें भी ले आया था। सिपाहियों की संगत में वह कुछ सिगरेट-विगरेट का भी शौक करने लगा था। बजदत्त के माँ-बाप ने अपने हाथ में तो पहले से आधा पैसा और बहू के लिए कीमती साड़ी और गहना आते देखा तो उनका

माथा ठनका ;... यह क्या ?...यह बहू तो डाइन है। इसने लड़के को बस में कर लिया है।

वजदत्त छावनी से कुछ नये ढंग भी सीख आया था। दिन भर घूमना-फिरना। खेती-बाड़ी के काम में उसका मन न लगता। बन्दूक चलाने वाले हाथ हल और फावड़े को क्या छुवें ? वह घूमता-फिरता पाँच मील परे चट्टी (सड़क के पड़ाव) तक चला जाता। वहाँ से थोड़ी मूंगफली या मिठाई ले आता और चुपके से बहू को दे देता। लिहाफ़ छोड़, अपना बिस्तर ऊपर रसोई में लगा लेता। दमती के किसी काम में लगे रहने से उसे अबेर होती मालूम होती तो पुकार बैठता—"अरी ओ ! " प्यास लगी है। पानी दे जा !" और फिर बहू को लौटने न देता। इतना तो माँ-बाप भी देखते थे, और मन मार कर चुप रह जाते। कुछ वे नहीं भी देख पाते थे। वजदत्त आराम से लेट, सिगरेट निकाल लेता। दमती को सिगरेट चूल्हे से सुलगा लेने के लिए कहता। दमती सिगरेट सुलगा देती तो वह खूब लम्बा कश खींच, उसे बाँहों में दबा लेता और सिगरेट भरी मुट्ठी दमती के मुँह पर रख ज़िद करता—"तू भी पी !" दमती को पहले तो धुंयें से खाँसी आई और घबराहट हुई। फिर धीरे-धीरे मज़ा आने लगा। सिर घूम जाने पर वह वजदत्त के सीने पर सिर रख आँखें मूंद लेती। दमती को भी यह सब अच्छा लगता।

वजदत्त के छुट्टी से लौट जाने से पहले ही सास का मन बहू से फट गया था। उसके चले जाने पर सास का व्यवहार और भी कड़वा हो गया। बहू भी चिढ़ने लगी—जाने बुढ़िया को क्या हो गया ? सब-कुछ करते-धरते भी गाली देती रहती है ? दमती भी उपेक्षा करने लगी। सुनकर भी न सुनती। सास का क्रोध और जलन भी बढ़ती गयी। दमती सास से दूर रहने लगी। ईंधन, पानी या घास के लिए जाती तो पहर भर लगा देती। सास घर पर हो तो वह गौ-घर से खाद फेंकने के लिये खेत चली जाती और सास अगर खेत पर हो तो वह घर पर बैठी रहती। दूर जाने का अवसर न हो तो गौ-घर की पछीत पर, जाड़ों के लिये जमा की हुई घास पर ही जा छिपती। अब घर और खेती के काम में उसका मन न लगता।

पहले कुछ तो एकलौते बेटे की बहू के लाड़ में और कुछ अपने आराम के खयाल से सास ने कहा—"सब तेरा ही है। मैं क्या छाती पर रख कर लेजाऊँगी। तू ही सम्भाल!" और घर भर दमती के हाथों में सौंप दिया था। टीन के दोनों बक्सों की चाबियाँ भी उसे ही दे दी थीं। सास के चांदी के तीन-चार गहने भी इन्हीं बक्सों में थे। नाराज़ हो जाने पर सास ने सब लौटा लिया और बक्सों की चाबियां भी अपने घांघरे के नाड़े में बांध लीं। यहाँ तक कि राँधने के लिये आटा-चावल भी खुद देने लगी; अपनी मुट्ठियों से नाप कर और वह भी इतना कि सास-ससुर के खा लेने पर बहू का पेट भरने के लिये भी न बचता। जलन में सास गालियाँ देती रहती कि डाइन ने उसके बेटे का मन उनकी तरफ़ से फेर लिया। जो कमा कर लाया, उसे ही दे गया!"····"उसकी कमाई छिपा ली और खाती है मेरे सिर!"

बजदत्त के लाये झुमके सिर धोते समय बालों में उलझ जाते थे। एक दिन दमती सिर धोने गयी तो झुमके निकाल कर ओबरी के आले में रख गई। लौटने पर सभी जगह ढूंढा पर न मिले। सास से पूछा तो वह गाली देने लगी—"हाय देखो डाइन को! अपना गहना खुद छिपा कर मुझे चोरी लगाती है!" दमती आँसू पोंछ चुप रह गई। एक दिन उसकी सुरमादानी भी गायब हो गई। बजदत्त छावनी लौटते समय अपना फोटो बहू को दे गया था। दमती ने फोटो सिगरेट की डिबिया में बचे हुए एक सिगरेट के साथ रख लिया था। सास फोटो भी न चुरा ले, इस डर से दमती ने वह डिबिया गौ-घर की पड़छत्ती में एक धन्नी की खोंस कर छिपा दी थी।

सास की गालियों की मात्रा बढ़ती जा रही थी और दमती को रसोई के लिये दिया जाने वाला अन्न घटता जा रहा था। इतना कि उसका पेट ही न भर पाता। एक दिन सास का दिया आटा और भी कम हो गया देख, दमती सास के रसोई से बाहर जाने पर, स्वयं ही कठौते से दो-तीन मुट्ठी आटा निकाल परात में डाल रही थी। सास ने पलट कर देख लिया।

सास पास-पड़ोस के लोगों को सुना, दमती को चोर कह

कर गालियाँ देने लगी—"जाने इस डाइन का कितना बड़ा पेट है! राँड का..."

सास का क्रोध भड़क उठा। वह बकती ही जा रही थी। दमती गुस्से में परात पटक रसोई से निकल गई। उसे ज़ोर की रुलाई आ रही थी। वह गौ-घर की पड़छत्ती पर जा लेटी। कुछ देर रोती रही। भूख लग रही थी। वह सोच रही थी, 'ये जाने कब आयेगा? उसके आने तक तो सास मुझे भूखों मार डालेगी।'

सास ने रोटी सेंक ली। ससुर को खाने के लिये पुकारा। बर्तनों की आहट से दमती ने जान लिया कि सास गुस्से में बर्तन उठा, आप ही माँजने के लिये पिछवाड़े चली गई है। दमती की आँखें भूख से कुड़मुड़ा रही थीं। ऊपर पड़छत्ती में खोंसी हुई सिगरेट की डिबिया पर उसकी दृष्टि पड़ी। सोचा, सिगरेट ही पीले। सिगरेट निकाल, सुलगाने के लिये दबे-पाँव रसोई में पहुंची।

दमती छिप कर रसोई मे गई थी परन्तु सास को आहट मिल गई। उसने भांपा, 'राँड रूठ कर डराती है और अब चोरी करने आई है।' वह बर्तन छोड़, चोरी पकड़ने के लिये दबे-पाँव ऊपर गई। वह बड़बड़ाती जा रही थी—"अभी चुड़ैल के झोंटे में आग लगाये देती हूँ!"

सास ने रसोई में झांक कर देखा, दमती चूल्हे के सामने बैठी, मुट्ठी में सिगरेट थामे कश खींच रही थी। सास की आँखें चढ़ गईं और मुंह खुला रह गया; जैसे खुले आकाश से पत्थर आ पड़ा हो। अपने आपे में आई तो चीख उठी—"अरे! देखो लो राँड को!...सिगरेट पी रही है!...हाय, यह तो बाजार की रंडी है। हाय रे, तभी तो मेरे लड़के पर जादू कर दिया! पैसे चुराती है और चट्टी से सिगरेट लाकर पीती है। बाबा रे, यह तो बखरी (बस्ती) के लौंडों को बहकायेगी...!" सास नीचे आँगन में आकर बाँहें फैला-फैला पड़ोस के लोगों को पुकार सुनाने लगी।

ससुर रोटी खाकर विश्राम के लिये दीवार के साथ पीठ टिकाये गुड़गुड़ी पी रहा था। वह गुड़गुड़ी हाथ में थामे, कश खींचता हुआ ऊपर रसोई के सामने पहुँचा और क्रोध में चिल्ला

कर बोला—"हरामज़ादी, निकल इस घर से ? ब्राह्मण के घर बाजार की रंडी कहाँ से आ गई ? निकल अभी ! नहीं तो अभी हाथ से तेरा मुंड काटता हूँ।"

दोपहर में कलेवा करने आये पास-पड़ोस के लोग भी झोंपड़ियों (बखरी) में ही थे। वे शोर सुन, बजदत्त के द्वार पर इकट्ठे हो गये। स्त्रियाँ पिछौरी के आँचल होंठों पर रखे, चकित खड़ी थीं। सभी बूढ़े-बूढ़ियों ने सहमत होकर कहा—"ब्राह्मण की बहू क्या ? यह तो बाजार की रंडी है। यह तो सब की जात बिगाड़ देगी ! न, बाबा ! इस घर का पानी कौन पियेगा ?"

दमती सिगरेट चूल्हे में फेंक सहमी हुई, रसोई में दुबकी बैठी थी। सास ऊपर गई और उसे चुटिया से पकड़ नीचे आँगन में खींच लाई। डरी हुई दमती आँचल में मुंह छिपाये वैसे ही खिंची चली आ रही थी जैसे कोई बेबस बकरा कान से पकड़ लिए जाने पर खिंचा चला जाता है। सास ने सब के सामने उसे लात मार कर कहा—"निकल जा, रंडी मेरे घर से !"

ससुर चिलम ठंडी हो जाने के डर से गुड़गुड़ी छोड़ नहीं पा रहा था। कश खींचता हुआ वह भी दमती को भारी-भारी गालियाँ दे घर से निकल जाने को कह रहा था और न निकलने पर मुंड काट लेने की धमकी दे रहा था।

दमती जगह-जगह से छिदी, मैल-सी घांघरी पहने और वैसी ही पिछौरी ओढ़े थी। मार कर निकाल दी जाने पर वह आँचल में मुंह छिपाये खेतों की ओर चल दी। खेतों से परे एक तुन के पेड़ के नीचे खड़ी हो सोचने लगी—कहाँ जाऊं ? क्या करूं ? उस घर में सास-ससुर के पास अब वह न जायगी। संसार में उसके लिये एक ही जगह थी, एक ही रास्ता था कि छावनी जाकर अपने आदमी से उसके माँ-बाप के अन्याय की शिकायत करे ! वह तेज़ कदमों से चट्टी की ओर चल दी।

दमती तीसरे पहर रुद्रप्रयाग जा पहुँची। दुकानों में पहुँच उसने छावनी का रास्ता पूछा। सोलह-सत्रह बरस की खूब जवान, अकेली और परेशान लड़की को छावनी का रास्ता पूछते देख, चट्टी के दुकानदार हीरामन को स्थिति भाँपते देर न लगी। उसने

दमती को ढारस दे, पुचकार कर बैठा लिया और परेशानी की हालत में घर से आने और छावनी जाने का कारण पूछने लगा। दमती ने आँचल से आँसू पोंछते-पोंछते सास-ससुर के अन्याय की और भूख की परेशानी में सिगरेट पी लेने की सच्ची-सीधी बात कह डाली। फिर बोली—"मेरा आदमी छावनी में है। उसी के पास जाऊंगी!"

हीरामन दमती की सास को गालियाँ दे उसे सान्त्वना देने के लिये बोला—"हाँ-हाँ। और क्या? अपने मर्द को छोड़ औरत का कौन होता है? वहीं जाना! तू थकी-माँदी आई है। ब्राह्मण की लड़की है। कुछ खा और सुस्ता ले। रास्ता बता देंगे। आराम से भीतर बैठ। अपना ही घर समझ!" उसने दमती को मूँगफली और मिठाई खाने को दी। एक लोटा जल दे बताया—"हम भी ब्राह्मण हैं। तू हमारे लोटे का पानी पी सकती है। घबरा मत।"

दमती को सड़क पर आते-जाते लोगों की नजरों से छिपाये रखने के लिये हीरामन ने भीतर की कोठरी में बैठा दिया। दमती छावनी पहुँचने के लिये उतावली हो रही थी। घंटे भर बाद ही बोली—"अब जाती हूँ। रास्ता बता दो!"

"वाह, ऐसा कहीं हो सकता है?"—हीरामन ने पुचकार कर समझाया—"मूर्खा कैसे जाने दूँ तुझे? पड़ोस की बहू-बेटी अपनी ही होती है। भात बना-खा कर जाना! सौ कोस का रास्ता है! धीरज से काम ले। उस तरफ़ जाते मुसाफिरों के साथ कर दूँगा तुझे। बेचारी अनजान औरत जात; अकेले कैसे जायगी?"

हीरामन ने दमती को दाल-चावल और बर्तन दे दिये। भात राँधते-बनाते साँझ का अँधेरा हो गया। दमती के मन में छावनी जाने की उतावली तो थी परन्तु उसने कई दिन बाद तृप्त होकर खाया था और ढारस की बोली सुनी थी। उसे ऊँघाई आने लगी। कोठरी की जमीन पर ही पड़ कर सो गई। कंधे पर ठेस अनुभव कर नींद खुली। देखा, कोठरी के कोने में छोटा-सा दिया टिमटिमा रहा था। हीरामन उसके कंधे पर हाथ रख, मुसकरा कर बोला—"अब क्या सोती ही रहेगी?"

दमती उसके हाथ की पहुँच से परे हट, नींद से बोझिल आँखें

मलने लगी। उसे परे हटती देख हीरामन वहीं जमीन पर बैठ गया और जेब से सिगरेट की डिबिया निकाल, एक सिगरेट उसकी ओर बढ़ा कर बोला—"अच्छा ले ! एक सिगरट तो पी !" दमती इनकार में सिर हिला आँखें मलती रही।

"तू पीती तो है। ले न !" - हीरामन ने आग्रह किया।

"ऊं हूं"—दमती फिर सिर हिला कर बोली—"कहाँ पीती हूँ ? वह तो मर्द ने दिया था।···एक पिया, तो यह हाल हुआ।···अब मैं छावनी जाती हूँ।"

"बड़ी जल्दी है तुझे छावनी जाने की ?"—हीरामन उसके समीप सरक कर बोला—"क्या करेगी छावनी जाकर ? वह तो तुझे और मारेगा कि घर से भाग कर क्यों आई ! कहेगा, तूने दुनिया में नाक कटा दी !"—प्यार से उसके कंधे पर फिर हाथ रख उसने समझाया—"तू मौज कर !···तुझे क्या है ?"

"हट !"—दमती और परे हट उठ खड़ी हुई।

"नहीं मानती तो तू जान !"—मुस्कराकर हीरामन बोला—"सुबह मुँह अंधेरे चली जाना। आधी रात में कोई रास्ता चलता है ? रात में सड़क पर सिपाही पहरा देते हैं। जिसे देखते हैं, चोर कह कर पकड़ लेते हैं। सुबह मुँह-अंधेरे उधर के मुसाफिर चलेंगे। तुझे उनके साथ कर दूंगा।·······बैठ तो !"

दमती उसके पास नहीं बैठी। हीरामन के आग्रह करने पर उसने उत्तर दिया—"वाह, पराये मर्द के पास कैसे बैठूं ?" और दूर ही खड़ी रही।

हीरामन पल भर सोच कर, बोला—"अच्छा, हमसे घबराती है तो तू यहाँ सो जा; हम जाते हैं। सुबह छावनी की तरफ़ मुसाफिर जा रहे हैं। उन से कह आऊँ। तुझे साथ लेते जायेंगे।"

हीरामन पिछवाड़े के किवाड़ खोल निकल गया। दमती फिर जमीन पर लेट छावनी जाने की बात सोचने लगी। मन में नयी जगह होने की घबराहट थी परन्तु घर कैसे लौटती ? कुछ देर बाद वह फिर सो गई। आधी रात में हीरामन ने दमती को फिर उठाया और बोला—बाहर एक जाना-पहचाना मुसाफिर है। बड़ा भला आदमी है। तू भी ख्याल रखना समझी ! अकेली रास्ता

चलती औरतों को पुलिस वाले भगोड़ी कह कर पकड़ लेते हैं। तुझ से कोई पूछे तो अपने को उसी की "सैणी" बता देना भला!"

दमती को अच्छा न लगा। "हट्ट!"—उसने उत्तर दिया—"किसी (स्त्री) बैग (दूसरे मर्द) को अपना मर्द कैसे कह दूंगी मैं?"

"पागल है तू!"—हीरामन ने अनुभवी और अपने पन के ढंग से समझाया—"दूसरे की तुझे कौन बना रहा है? तू गाँव की रहने वाली है, सड़क पर चलना क्या जाने? तेरे ही भले की कह रहा हूं। औरत को अकेली रास्ता चलने का सरकारी हुक्म नहीं है। कोई नाम-गाम पूछे तो अपना नाम नन्दा बताइयो और कहना—*मेरा आदमी साथ है। जो पूछना है, उससे पूछो! पुलिस वाले* बैग (गैर मर्द) के साथ चलती औरत को पकड़ कर थाने ले जाते हैं। पुलिस वाले मारेंगे और खराब करेंगे! यह तो बड़ा भला ब्राह्मण है तू उसे अपना भाई समझ!"

दमती को दुकान से अंधेरी सड़क पर ला हीरामन बाहर प्रतीक्षा करते आदमी से बोला—"ले भैया, यह हमारे पड़ोस की लड़की है, बेचारी। इसे छावनी में ठीक से पूछ कर इसके मर्द को सौंप देना। रास्ते में इसे कोई तकलीफ न हो! ख़याल रखियो! ब्राह्मण की लड़की और गाय बराबर होती है। समझे"!

दमती अँधेरे-अँधेरे उस आदमी के साथ चलती जा रही थी। *कुछ दूर जा कर वह बात करने लगा—"इस वक़्त अँधेरे में बड़ी तकलीफ़ कर रही है तू?...क्या बात है?"—वह कुछ दूसरी सी बोली बोलता था। दमती ने फिर सास-ससुर के ज़ुल्म, सिगरट पीने* पर मार कर निकाल दी जाने और छावनी में अपने मर्द के पास जाने की सीधी-सच्ची बातें बता दीं। इस आदमी ने भी दमती के सास-ससुर का गाली दे उसे ढारस बँधाया—"आह, तेरी-जैसी भली लड़की के साथ ऐसा करना था उस रॉड को? तुझे तो खाने को दूध-मिठाई और पहनने-ओढ़ने को अच्छा गहना-कपड़ा मिलना चाहिये। तेरी उमर क्या गोबर ढोने और खेत निराने की है? राम राम! तेरे, घाघरी-पिछौरी कैसे फट रहे हैं? श्रीनगर के बाजार में हम तुझे धोती ले देंगे।"

"तू बेचारा क्यों ले देगा?"—दमती ने उसकी सहानुभूति का आदर कर उत्तर दिया—"मुझे अभी धोती का क्या करना

को खटखटाया और पूरी शक्ति से भीतर को खींचा, पर किवाड़ न खुले। उसने समझ लिया कि वह ऐसे ही मर जायगी। फिर रोने लगी। अब रोकर भी क्या बनना था ? वह निर्जीव-सी पड़ी थी। मन में आया कि फांसी लगा कर जान दे दे। धोती कहां थी जो फांसी लगा लेती ! खयाल आया कि जब गाँव से निकल पेड़ के नीचे खड़ी हो, उसने छावनी जाने की बात सोची थी, तभी पिछौरी से फांसी क्यों न लगा ली ? देखते-देखते किवाड़ों की झिरियों से ज़मीन पर पड़ने वाली प्रकाश की लकीरें धुंधली हो गईं और फिर घटाटोप अंधेरा छा गया। थक कर और निराश होकर उसने आहें भरना भी छोड़ दिया और मर जाने की प्रतीक्षा करने लगी। पाखाना-पेशाब न कर सकने की असुविधा और प्यास से उसका सिर चकरा रहा था। कोठरी का अंधेरा और कभी गांव या सड़क के दृश्य उसे सिर के चारों ओर घूमते दिखाई देने लगते।

किवाड़ों की झिरियों से फिर प्रकाश आने लगा था पर अब उस ओर दमती का ध्यान नहीं गया। वह अध-बेहोश-सी हो रही थी। किवाड़ों के खुलने का खटका हुआ तो वह कठिनाई से सिकुड़ कर बैठ पायी। वही आदमी भीतर आया। दमती के कपड़े उसके शरीर पर फेंक कर बोला—"उठ ! जा ! नहा-धो !" कोठरी के किवाड़ खुले छोड़ और आंगन के किवाड़ बाहर से बन्द कर वह फिर चला गया।

करीब डेढ़ घण्टे बाद वह आदमी फिर लौटा तो दमती पानी पी, निबट और नहा-धो कर अपने पुराने कपड़े पहने दीवार से पीठ टिकाए, सिर को दोनों हाथों में थामे बैठी थी। उसकी तबीयत कुछ ठिकाने आ चुकी थी। वह आदमी एक अंगोछे में कुछ बाँधे और एक लोटे में दूध लिए था। अँगोछा दमती के सामने रख कर बोला—"ले, तेरे लिए पूरी-तरकारी बनवा लाया हूँ। कुछ खा ले और यह दूध पी ले।"

"मुझे कुछ नहीं चाहिए"—दमती हाथ जोड़ गिड़गिड़ाई—"तू मुझे यहां से जाने दे !"

"अरी भूखी कैसे चलेगी ? हमने तुझे क्या कहा है ? तू तो यूं ही बिगड़ने लगी !"—वह समझाने लगा—"दुकानदार ने तुझे

छावनी पहुँचाने को कहा है, सो हम पहुँचा देंगे ! तू कुछ खा तो ले ! अकेली जायगी तो भटक जायगी । पुलिस वालों के हाथ पड़ गई तो जानती है, क्या होगा ? तू कुछ जानती तो है नहीं । हम पहुंचा देंगे । तू पहले खा तो ले !"

दमर्ती भूखी तो थी ही, सामने खाना देख वह खाने लगी। आदमी कोठरी खुली छोड़, आंगन का दरवाजा बन्द कर चला गया। कुछ देर बाद लौटा और दूर बैठ दमन्ती को समझाने लगा "देख पागल मत बन । औरत एक बार घर से निकली तो घर में उसके लिए जगह नहीं रहती। ब्राह्मण के घर की औरत तो मिट्टी का बर्तन है। एक बार छू गया तो फिर काम का नहीं रहा। कहीं तेरे मर्द ने मूंड ही काट लिया तो ? गांव जायगी भी तो क्या ? गोबर और ईंधन ढोयेगी ? हमारे साथ देश चल ! बढ़िया गहना, कपड़ा, और दूध मलाई रबड़ी खाने को मिलेगी ।"

दमर्ती हाथ जोड़ फिर गिड़गिड़ाई —"नहीं, तू मुझ पर दया कर। मुझे यहाँ से जाने दे। मैं अपनी राह चली जाऊंगी। छावनी पहुंच जाऊँ, चाहे गाँव लौट जाऊँ।"

"अच्छा, तू हम से नाराज हो गई है"—उस आदमी ने नम-भौते के स्वर में कहा —"तो हमारे साथ न चल। एक दूसरा ब्राह्मण है; तेरी पट्टी का। वह आज शाम छावनी जा रहा है। उसी के साथ चली जाना, बस ? मैं उसे बुलाये लाता हूं।" – वह फिर उठ कर चला। दमती को बाहर से किवाड़ों पर साँकल लगने की आवाज फिर सुनाई दी।

दमती घबरा गई। अब की जाने कैसे आदमी से पाला पड़े ! उसने आंगन के किवाड़ों को खींच कर आज़माया। वे खुले नहीं। इधर-उधर देखा। आँगन की दीवार उसके सिर से ऊँची थी। बाँह उठाने पर भी हाथ दीवार के सिरे तक न पहुंचा। आँगन के कोने में बने पाखाने की दीवार उसके सिर के बराबर ही थी। पाखाने में पिछली दीवार की तरफ नीचे झरोखे थे परन्तु बहुत छोटे। वह यहाँ से भागने को सभी-कुछ करने के लिये तैयार थी परंतु झरोखे बहुत ही छोटे थे। उसे एक उपाय सूझा। उसने पाखाने की दीवार के समीप गागर औंधा कर रख दी और उस छोटी

दीवार पड़ चढ़ गई । इस दीवार से आँगन की दीवार पर चढ़ी, और फिर बाहर कूद गई । गली में से तेज़ी से चली, कुछ ही कदम पर बाज़ार आ गया । वह रास्ता चलने वालों से छावनी की राह पूछने लगी ।

फटे कपड़ों में अकेली परेशान औरत को छावनी की राह पूछते देख लोग इकट्ठे हो गये । आदमियों को इकट्ठे होते देख, पुलिस का आदमी भी पहुँच गया । दमती को थाने ले जाया गया । दारोगा ने उसका नाम, गाम और श्रीनगर आने का कारण पूछा । दमती ने फिर अपनी सच्ची-सीधी कहानी सुनाकर, सिगरेट पीने के कारण मार कर निकाल दी जाने की बात सुना दी । दारोगा कुछ मुस्कराये, बोले—"तू सिगरेट पीती है ?"......"ले !" और उन्होंने एक सिगरट उसकी ओर बढ़ा दी ।

"उहूं !"—दमती ने इनकार कर दिया—"वह तो मेरे मर्द ने दी थी ।"

इस बात की तलाश शुरू हुई । कि उसे कौन आदमी श्रीनगर लाया है और वह कहाँ बन्द रही थी । पुलिस ने दमती को बाजार में और कई गलियों में घुमाया परन्तु वह कुछ पहचान न सकी । "मैं तो खुद ही आई हूं । मैं छावनी जाऊँगी"—वह ज़िद करती रही ।

घर से भागी औरत को अपनी मर्ज़ी से जहां चाहे, जाने नहीं दिया जा सकता था । गिरफ्तार औरत को थाने में रखना भी कायदे के खिलाफ़ था । उसे गारद की रखवाली में तुरन्त पौड़ी की जेल-हवालात में भेज देना चाहिये था परन्तु सिपाही मौजूद नहीं थे और रात होने को थी । सिपाही उसे रुद्रप्रयाग से लाने वाले बदमाश का पता लगाने के लिये कई मकानों में घुमाते रहे । उसे बार-बार प्यार से सिगरेट और मिठाई दिलाई गई । दमती क्रोध में मुँह फेर लेती । ज़ोर-जब्र करने पर वह हाथापाई के लिये तैयार हो जाती । अगले दिन उसे दो सिपाहियों की रखवाली में पौड़ी पहुँचा दिया गया ।

मजिस्ट्रेट के सामने पेश की जाने पर उसने फिर अपनी सच्ची कहानी सुना कर कहा कि वह घर नहीं लौटेगी । अपने मर्द के

पास छावनी जायगी। उसे समझाया गया कि उसे यों भाग कर जाने नहीं दिया जायगा। वह अपने मर्द को ढूँढ भी नहीं पायेगी। सरकार बजदत्त को वहीं बुलवा कर, उसे उसके मर्द के हवाले कर देगी। तब तक उसे जेल के हवालात में रहना पड़ेगा।

दमतो बजदत्त का सिपाही-नम्बर और कम्पनी-नम्बर बता नहीं सकी। इसलिये ज्योला पड्डी, कनार गांव के सिपाही बजदत्त की तलाश करने में कुछ समय लग गया। इस बीच बजदत्त के बाप ने दो पोस्ट कार्डों पर पूरा हाल लिखवा कर भेज दिया था कि उसकी बहू बदचलन और आवारा हो गई है। घर से पैसा चुरा कर चट्टी से सिगरेट खरीद कर पीती है। उसने घर का जेवर भी चुरा कर बेच दिया है। पास-पड़ोस में 'ससपिटाई' (कलंक की टीका) हो गई है। अब सड़क पर किसी मुसाफिर के साथ भाग गई है। पत्र में प्रौढ़ पिता ने युवा पुत्र को आश्वासन दिया था—"तू जी छोटा मत करना। ऐसी बहू का क्या? हम बातचीत कर रहे हैं। तू इस बार छुट्टी पर आयेगा तो ब्याह कर देंगे!"

बजदत्त को जब कचहरी का कागज मिला कि पौड़ी अदालत में आकर अपनी बहू को पहचान कर उसकी सिपुर्दगी ले तो उसे अपने पिता की बात पर पूरा विश्वास हो गया।

× × ×

रूद्र प्रयाग में हीरामन ने मनहर पंडित को बताया था कि एक खूब जवान, अल्हड़ ब्राह्मनी सास-ससुर से परेशान हो घर से भाग आयी है। उसकी दुकान पर बैठी है। मनहर ने दमतो को हीरामन से अस्सी रुपये में खरीद लिया। उसका खयाल था कि लड़की को महीना-पन्द्रह दिन श्रीनगर में रखेगा। कुछ दिन तफ़रीह रहेगी। इस बीच लौंडिया दुनिया का ढंग समझ जायगी तो उसे देस ले जाकर चार-पाँच सौ में बेच डालेगा। उसने इस तरह जाने कितनी औरतें पार कर दी थीं परन्तु श्रीनगर में दमतो की जिद के आगे मुंह की खा कर उसे अपनी भूल समझ में आई। उसने समझा कि वह उतावली कर गया। लौंडिया उससे बिगड़ बैठी है। अब उसके हत्थे मुश्किल से चढ़ेगी। इस झंझट में समय

बरबाद करने से कुछ लाभ न देख, मनहर ने सोचा कि लड़की को श्रीनगर में ही शिवदत्त के हाथ डेढ़-दो सौ में बेच दे।

दमती को शान्त करने के लिये उसको कपड़े और पूरी-मिठाई दे, मनहर शिवदत्त की खोज में गया था। शिवदत्त को घर न पा कर वह लौट रहा था। उसने बाजार में छावनी की राह पूछती, भागी हुई औरत के पुलिस द्वारा पकड़ कर थाने ले जाये जाने की खबर सुनी। उसका माथा ठनका। अपने अड्डे पर जा, उसने देखा तो दमती गायब थी। पाखाने की दीवार के पास औंधी गागर देख वह समझ गया कि दमती दीवार फाँद भाग गई और अब पुलिस के हाथ में है।

मनहर अपने अस्सी रुपये यों पानी में बहा देने के लिये तैयार न था। पुलिस का उसे कोई डर नहीं था। उन्हें वह मौका पड़ने पर पटा सकता था। उसे क्रोध आया हीरामन पर। उसने समझा कि यह लौंडिया पक्की चालबाज है। पुलिस को चकमा दे कर फिर हीरामन के पास जायगी और वह इसे फिर बेचेगा। तभी वह काइयां इतने सस्ते दामों मान गया था। दाँत पीस कर उसने मन में कहा--"अच्छा बेटा, आपस में यह धोखा? मैं तेरी वह खबर लूँगा कि छट्ठी का दूध याद आ जायगा! देखूँ, यह औरत जाती कहाँ है?' वह अनुभवी आदमी था। दमती की जिद्द की बात से उसने यह भी सोचा कि अगर वैसी होती तो इतनी हाय-हत्या क्यों करती? फिर भी देखा जाय कि हीरामन के यहाँ लौटती है या अपने आदमी के यहाँ जाती है?

मनहर ने दमती के पौड़ी भेज दिये जाने की बात सुनी तो वह भी उस पर नज़र रखने के लिये पौड़ी पहुँचा। जिस रोज बजदत्त और दमती अदालत के सामने पेश किये गये, मनहर अदालत में मौजूद था। दोनों को एक-दूसरे को पहचानते देख उसे कुछ विस्मय हुआ। मामले को अन्त तक देखने के लिये वह धैर्य से प्रतीक्षा करता रहा। बजदत्त ने अदालत में दमती को अपनी बहू तो मान लिया परन्तु जब अदालत ने हुकुम दिया कि औरत बजदत्त को सौंप दी जाय तो उसने दमती को ले जाने से इनकार कर दिया। उसने कहा कि घर से भागी हुई बदचलन औरत को वह नहीं ले जायगा।

दमती ने सुना तो एक गहरी साँस ले, दोनों हाथों से सिर थाम बजदत्त की ओर देखती रह गई। उसका सिर झुक गया और आँखें मुंद गईं। जब उसने सिर उठा कर देखा तो बजदत्त कहीं दिखाई न दिया।

अब सरकार भी दमती को जेल में जगह देने के लिये तैयार न थी। बजदत्त की भागी हुई औरत को बजदत्त की सम्पत्ति मान कर उसे सौंप देना सरकार का काम था। जब बजदत्त ने स्त्री पर से अपना अधिकार हटा लिया तो सरकार को भी दमती से कोई मतलब नहीं रहा। मजिस्ट्रेट ने दया कर के दमती को सुझाया कि अगर वह चाहे तो अपने मर्द से अपना खर्च माँग सकती है लेकिन दमती ने इनकार में सिर हिला दिया। दमती को हुकुम हुआ—"अब उसे इजाज़त है, जहाँ चाहे, चली जाय।" दमती की आँखों के आगे अँधेरा था परन्तु उसे अदालत से बाहर निकलना ही पड़ा।

मनहर पंडित यह सब कांड देख रहा था। दमती पथराई हुई आँखों और अनिश्चित कदमों से अदालत से बाहर निकल रही थी। उसके सामने प्रश्न था कि अब वह जाय कहाँ? दमती ने सुना—"कहो, कहाँ चली गई थीं तुम?"

दमती ने घूम कर उसे देखा। पहचान लिया और चुप रही।

मनहर आश्वासन के स्वर में बोला—"तू यों ही बुरा मान गई। हम तुझे परेशान थोड़े ही करना चाहते थे। तुझे ढूंढते-ढूंढते यहाँ तक आये। हमने तो पहले ही कह दिया था कि अब घर में तेरे लिये जगह नहीं। पर तुझे परेशान होने की जरूरत क्या? चल, मेरा अपना घर है।"

दमती ने क्षण भर सोचा और फिर मनहर के साथ-साथ चल दी। मनहर उसे बाजार की एक गली के मकान में ले गया और बैठने के लिये आदर से चटाई दी। दमती पीठ सटा, सिर झुकाये हुए चुपचाप बैठ गई।

"बहुत थक गई है तू! ले, एक सिगरेट तो पी। ज़रा जी हल्का हो जायगा।"

नौ

फूल की चोरी

इस वर्ष जिस बंगले में ठहरा हूं, उसकी केवल ऊपर की मंज़िल में ही मेरा फैलाव है। इसका यह मतलब नहीं कि मुझे घुटने मोड़कर गुज़ारा करना पड़ता है। एक बड़े कमरे में तो मैं केवल मैले हो गये कपड़े ही रखता हूँ। दूसरे में ऐसे कपड़े जिन्हें अभी व्यवहार में लाना है। यह बात भी नहीं कि इस पहाड़ी नगर में जगह की कमी न हो, या मकान बेकार पड़े हों, यह केवल मुझे यहां बुलाने वाले मित्रों का सौजन्य है। यह मकान मुझे सभी तरह से बहुत पसन्द है। सामने दूर तक फैली पहाड़ियों का दृश्य, घने पेड़ों में फूलों से घिरे, सुथरे दिखाई देने वाले मकानों का पड़ोस; भीतर से वे मकान शायद ही सुथरे हों? फूल खूब हैं क्योंकि इस जलवायु में सुन्दर फूल आसानी से प्रचुर मात्रा में हो जाते हैं। इस बंगले के सामने भी कुछ अच्छे गुलाब, चमेली, डालिया, ग्लैडियोला और आस्टर के फूल हैं। फूल नीचे ज़मीन पर हैं। मैं दुमंज़िले पर हूँ। उन फूलों पर मेरा कोई अधिकार नहीं। उन पर नीचे के किरायेदारों का ही अधिकार है। मैं इन फूलों को देख भर पाता हूं। फूलों का और उपयोग ही क्या है? हां, एक और भी उपयोग है और वही बात कहना चाहता हूँ।

नीचे की मंज़िल में दो भद्र महिलायें रहती हैं। मुझे इस मकान में दो मास से अधिक बीत गये हैं। कभी एक भी बात, कुशल-मंगल की जिज्ञासा या कामना भी हम पड़ोसियों में नहीं हुई क्योंकि वे दोनों सम्मानित और सच्चरित्र हैं और मैं भी कम

सम्मानित और सच्चरित्र नहीं हूँ। इस बीच मुझे दो-तीन बार शीघ्र खराब हो जाने वाले फल और दूसरे खाद्य पदार्थों की भेंटें सहृदय लोगों ने भेजी हैं। इन भेंटों का अधिकांश मुझे दूर रहने वाले स्थानीय मित्रों में बांट देना पड़ा। अकेले पूरी वस्तु का उपयोग किया नहीं जा सकता था लेकिन इसी मकान में रहने वाली भद्र महिलाओं को मैंने इन भेंटों का कोई अंश नहीं दिया। गैर पुरुषों से बात करना उनके सम्मान और सच्चरित्रता को शोभा नहीं देता। मैं स्वयं भी इस प्रकार के व्यवहार के लिये कोई संकेत नहीं कर सकता।

कुछ ही दिन पहले घर से बाहर की स्त्रियों से व्यवहार के सम्बन्ध में एक सच्चरित्र व्यक्ति ने यह परामर्श दिया था कि हमें सभी स्त्रियों को अपनी बहन समझ लेना चाहिये! मेरा उत्तर था—"मुझे दुनिया भर का साला बनने का कोई शौक नहीं!" हमारे देश में साला कहलाना गाली है और बहनोई कहलाना आदर सूचक! तभी इस देश में लड़कियों को जनमते ही गले में अंगूठा देकर मार दिया जाता था। यों हमारी संस्कृति में स्त्रियों को देवी कहा गया है और उपदेश है कि जहां नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता रमण करते हैं। सवाल यह है कि किसी स्त्री को बहन बनाये बिना क्या उसके प्रति शिष्ट व्यवहार कर सकना असम्भव है? खैर......

सच्चरित्रता निबाहते-निबाहते एक दिन अभद्रता हो ही गई। उसका कारण यह फूल ही थे। मैं सुबह उठकर बरामदे में बैठ जाता हूँ। दूसरी मंजिल के बरामदे से दूर तक का दृश्य और नीचे ताज़े खिले फूल दिखाई देते रहते हैं। सामने 'सिलवर ओक' के सदा बहार पेड़ों पर गुलाब के छोटे फूलों की बेलें चढ़कर शाखों में लिपट गई हैं। कल ही से गुलाब का एक गुच्छा मेरे बैठने की जगह के ठीक सामने खिल गया है। वह गुच्छा सुबह ओस से भीगा हुआ बहुत ही सुन्दर लग रहा था जैसे पलने में किलकता हुआ बच्चा!

नीचे की मंजिल में रहने वाली भद्र महिलायें पूजा भी करती हैं। नित्य प्रातः मैं उन्हें कुछ मंत्र या भजन गुनगुनाते हुए पूजा के लिये अपने हाथ से फूल चुनते हुए देखता हूँ। भगवान के प्रति आदर से या भगवान की प्रसन्नता के विचार से बढ़िया से बढ़िया

फूल पूजा के नैवेद्य में रखना उचित है। भद्र महिला ने कुछ ताज़े फूल चुन गुलाब के इसी गुच्छे की ओर हाथ बढ़ाया —

"इसे रहने दीजिये !" सहसा मेरे मुंह से निकल गया। मैं उन फूलों को संताप की बेबसी में देख रहा था। सदाचार की सावधानी जागरित नहीं थी।

सिकुड़ गई भवें माथे पर पड़ गई त्योरियों की ओर ऊपर चढ़ा उन्हों ने दृष्टि ऊपर बरामदे की ओर की—"पूजा के लिये है !"

"होगा;"' "भगवान कौन बच्चा है जो फूलों से बहलेगा" — कहना ही पड़ा क्योंकि बात शुरू हो गई थी।

भद्र महिला होंठ सिकोड़ अपने सम्मान की रक्षा के लिये मेरी दृष्टि के सामने से हट गई। ख्याल आया, तुम दूसरों के फूलों के सम्बन्ध में बोलने वाले कौन हो? पराई सम्पत्ति को तो मिट्टी समझना चाहिये। और फिर एक अपरिचित भद्रयुवती से उसकी वस्तु के सम्बन्ध में बात करना? खैर अब तो हो ही चुका था।

बरामदे में बैठा सुन्दर दृश्य के साथ ही एक और चीज़ देखा करता हूं। इसी समय एक छोटी सी लड़की, लगभग छः-सात वर्ष की, हाथ में छोटा सा छींका लिये, दबे पांव दुबकती हुई आई; चौकन्नी ठीक वैसे ही जैसे गृहणी के रसोई में रहते समय बिल्ली बरतन-भांडों के पीछे दुबक-दुबक कर उसकी ओर नज़रें लगाये, दबे पांव चलती है। बंगले की फुलवाड़ी में कदम रख वह पहले बेला की घनी झाड़ी के पीछे से गर्दन बढ़ा कर देखती है कि भद्र-महिलायें बरामदे से या दरवाज़े से देख तो नहीं रहीं? अवसर देख वह पंजों पर दो कदम लपक कर डालिया के पीछे हो जाती है। इसी तरह वह फुलवाड़ी के दूसरे छोर तक जा पहुँचती है। उसकी गतिविधि बहुत पक्के चतुर चोर की तरह होती है जो उसके छोटे शरीर और भोले चेहरे पर खिलवाड़ सी जान पड़ती है। वह जानती है कि चोरी करती पकड़ी जाने पर उसे डांट या गालियां मिल सकती है। मैं ऊपर बरामदे से उसे देखकर मुस्कराता रहता हूँ। कद छोटा होने के कारण वह जंगले के ऊपर से मुझे देख नहीं पाती।

वह सम्भवतः इस बंगले के बाईं ओर बहुत समीप बाज़ार के

दुमंजिले-तिमंजिले मकानों की किसी कोठरी से आती है। इन मकानों की हर एक मंजिल के दड़बों में कई-कई परिवार भरे हुए हैं। उन मकानों में फूल-फुलवाड़ी का अवसर कहां? लेकिन भगवान की पूजा के लिये फूल तो चाहिये ही! शायद उसकी मां या बाप नियम से पूजा करते हैं। अपनी पूजा के लिये भगवान ने उन्हें कोई सुविधा नहीं दी है। इस बच्ची के भगवान की पूजा के लिए नित्य चोरी करनी पड़ती है। इस चोरी का पाप अधिक बोझल होगा या पूजा का पुण्य? घट-घट व्यापी भगवान तो अपनी पूजा के लिए इस बच्ची का जोखिम उठाना और चोरी करना दोनों ही देखते हैं। इस बच्ची की घबराहट और चौकसी देख कर जान पड़ता है कि इस फुलवाड़ी से फूल तोड़ कर ले जाना इसके लिये उतना ही शंकास्पद है जितना कि हनुमानजी के लिये लंका में जा कर सीताजी के सामने राम की अंगूठी फेंक देना था।

भगवान की भक्तवत्सलता की अनेक कहानियां सुनी हैं। वैसी घटना देखने का कोई अवसर नहीं हुआ। इस भक्तिन की भावना क्या भगवान नहीं जानते? उन्हीं के चरणों में अर्पण करने के लिये दो फूल पाने का भी अवसर इसे नहीं! भगवान पूजा की आशा तो सबसे रखते हैं परन्तु पूजा के साधन और अवसर किसी-किसी को ही देते हैं। भक्त लोग कहते हैं कि भगवान हाथी से यदि मन भर की आशा रखते हैं तो चींटी से कण भर पाकर ही तृप्त हो जाते हैं परन्तु करोड़ों इनसान तो ऐसे हैं जो कण भर अर्पण करने का भी अवसर नहीं पा सकते। भगवान यदि भावना से ही प्रसन्न हो जाते हैं तो बिड़ला जैसे लोग क्या मूर्ख हैं जो भगवान के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए पचास लाख रुपया खर्च कर मन्दिर बनवा देते हैं? क्या उनका भगवान के प्रति ऐसी भक्ति दिखाना मूर्खता ही है? बिड़ला और बिड़ला समाज के लोग यदि इतने ही मूर्ख होते तो इस संसार के शासन की बागडोर उनके हाथ में नहीं, भावना से भगवान का भजन करने वाले साधनहीनों के ही हाथ में होती।

खैर; इस फूल चुनने वाली लड़की की बात? यह बहुत बेदर्दी से फूल तोड़ती है क्योंकि इसे फुलवाड़ी के बेरौनक हो जाने की कोई चिन्ता नहीं। फूल चुनने का कायदा यह है कि जिस डाल में तीन फूल हों, एक ले लीजिये। खास तौर पर चोटी के फूल या

बैठने की जगह से दिखाई देने वाले फूल नहीं चुनने चाहिये लेकिन इस लड़की को फुलवाड़ी से कोई मतलब नहीं। इसे पूजा के लिये फूल चाहिये। फुलवाड़ी कल उजड़नी हो, आज उजड़ जाये। यह भोली लड़की अकाल से लाभ उठाने वाले चोरबाज़ार व्योपारी की तरह क्रूर है। चोरबाज़ारी से मुनाफा उठाने वाला व्यापारी और व्यवसायी भी यह सोचता है कि समाज कल मरता है तो आज मरे! उसे मुनाफ़ा कमाने का ऐसा अवसर कहां मिलेगा? ख्याल आया, समाज की आर्थिक व्यवस्था को केवल अपना मुनाफा कमा सकने के अवसर और अधिकार की दृष्टि से देखने वाले व्यवसायी क्या इस लड़की की अपेक्षा अधिक समझदार हैं? यदि भद्र महिलायें इस लड़की की फूल चोरी पकड़ लें तो इसके कान ज़रूर उमेठे जायेंगे, दो चार थप्पड़ भी लग सकते हैं। मज़ा यह है कि समाज को उजाड़ने वाले व्यापारी और व्यवसायी को ऐसा कोई भय नहीं क्योंकि समाज की फुलवारी में चोरों को पकड़ने और उनके कान उमेठने का अधिकार इन लोगों ने अपने हाथ में कर लिया है।

इस लड़की की फूल चोरी पकड़ी जाने पर इसके पिटने की आशंका से मुझे दुख होता है। इसलिये मैं इसकी चोरी पर हो-हल्ला न मचाकर मूक सहयोग देता हूँ। चोरी में इस प्रकार सहयोग देना अनैतिकता है। इस अनैतिकता के लिये मैं लज्जा अनुभव नहीं करता। कुछ ऐसे अनैतिक काम हैं जिनके लिये चुप रहना भद्रता समझ लिया गया है, उदाहरणतः सरकार को दिये जाने वाले करों में चोरी कर लेने पर आपको कोई चोर नहीं समझता या आप ऐसे चोरों के विरुद्ध कोई चेतावनी नहीं देते! मैं भी इस लड़की की फूल चोरी के विरुद्ध चेतावनी की पुकार उठाने के बजाय सहानुभूति से आशंका ही अनुभव करता रहता हूँ कि कहीं यह पकड़ी न जाय! इसकी चोरी मेरे लिये मन बहलाव का साधन है परन्तु इसकी चोरी कब तक नहीं पकड़ी जायगी?

ख्याल आया, क्या इसकी फूल चोरी में मूक सहयोग देना ही उचित है? चोरी क्या है? आवश्यक पदार्थों को प्राप्त करने का अनुचित ढंग ही चोरी है। आज यह केवल फूल चुराती है।

बंगले के छोटे बगीचे में अनार और आलूचे के पेड़ भी हैं। अभी उनमें फलों के छोटे-छोटे दाने आ रहे हैं। कुछ दिन बाद यह फल गदरा जायेंगे। उस समय यह लड़की चटनी बनाने के लिए इन फलों को चुरायगी। आज इसे पूजा के लिये फूलों की आवश्यकता है। कल चटनी के लिये अनारदाने और अलूचे की आवश्यकता होगी। अनारदाना और अलूचे पैसे दो पैसे में बाजार से खरीदने जाने का प्रश्न होगा और यह स्वाभाविक विचार भी आगा कि दो-दो करके जो पैसे बचेंगे उनसे वह चूड़ियाँ खरीद सकेगी या एक धोती, जिसकी उसे बहुत जरूरत होगी। क्योंकि उसका रंग और चेहरा साफ और प्यारा होने पर भी कपड़े मैले और पुराने रहते हैं।

फूल और फल चुराने की आवश्यकता से चोरी के प्रति उसका संकोच दूर गया है। कभी आवश्यकता से पीड़ित होने पर और साहस बढ़ने पर वह कपड़े या जेवर पर भी हाथ साफ कर सकती है। उस अवस्था में, मैं दूसरे लोग और शासन व्यवस्था मुस्करा कर इसे माफ नहीं कर देंगे। हथकड़ी पहन कर इसे न्याय के लिये अदालत में खड़े होना पड़ेगा! इसके उस भावी दुर्भाग्य का आरंभ आज फूल चोरी से ही रहा है, भगवान को पूजा से सन्तुष्ट करने के लिए फूल की चोरी से! परन्तु तब क्या भगवान यह सोचेंगे कि चोरी के प्रति इसकी प्रवृत्ति किस कारण से किस अवस्था में हुई थी? इस बेचारी से और इसके माँ-बाप से पूजा की आशा कर भगवान ने इन्हें पूजा के लिए फूल नहीं दिए हैं!......भगवान तुम भलाई की आशा तो सभी से करते हो परन्तु भले बनने का अवसर कितने कम लोगों को देते हो?

दस

अनुभव की पुस्तक

परिचय प्रायः काम देता है परन्तु कभी पहिचाने न जाने से ही सुविधा हो जाती है। अलमोड़ा से लोहाघाट जा रहा था। वहां सफर के दो ही तो तरीके हैं, पैदल चलो या घोड़े पर। असील और शकील जानवर सस्ते किराये में मिल गया इसलिये सवारी कर ली थी। कपड़े मैले न जान पड़ें इसलिये सफर में प्रायः खाकी कमीज़, पतलून और धूप से बचाव के लिये हैट पहनता हूं।

सड़क पर गनचौकी की दुकानों से एक मील आगे बढ़ गया था। चढ़ाई कड़ी है और बार-बार मोड़ आते हैं। एक मोड़ पर से घूमा तो सड़क किनारे घने पांगर की ठंडी छांव दिखाई दी। छांव में ढलती आयु की एक प्रौढ़ा और उससे हाथ भर परे उसी आयु का एक मर्द भी जमीन पर ही बैठा दिखाई दिया। जान पड़ता था, दोनों राह चलते-चलते ठंडी छांव देख विश्राम के लिये बैठ गये हैं और बतिया रहे हैं।

मेरी सवारी के घोड़े की टाप सुन प्रौढ़ा ने आंखों को धूप से बचाने के लिये हाथ से भौं पर छांव कर मेरी ओर देखा और जैसे पहचान कर तुरन्त उठ खड़ी हुई। जमीन पर ही बैठ जाने से उसके लहंगे पर सूखी पत्तियां और घास चिपक गई थीं, वह उन्हें झाड़ कर सड़क पर आगे बढ़ आई। उससे दो कदम पीछे-पीछे उसके समीप बैठा मर्द भी था। इन लोगों को अपनी ओर बढ़ते देख घोड़ा रोक लिया।

"जंट शैब छी माराज ?" (क्या महाराज मजिस्ट्रेट साहिब हैं ?)—बुढ़िया ने दोनों हाथ नमस्कार के लिये उठा लिये।

"ऊं हूं"—सिर हिलाकर मैंने इन्कार किया और अलमोड़ियों पहाड़ी बोली में पूछा—"क्यों ? क्या जंट साहिब आने वाले हैं ?"

बुढ़िया ने एक लम्बा सांस छोड़ा मानों सिर पर आई अलाफ़ टल गई हो। जंट साहिब से बात करने के लिये फेफड़ों में संचय किये साहस को अभी अनावश्यक बोझ समझ, उससे छुट्टी पा ली हो। प्रौढ़ा ने घूम कर सान्तवना से अपने साथी की ओर देखा और शिथिलता से दोनों हाथ अपनी कमर पर टिका; अपनी भाषा में मुझे सम्बोधन किया—"तो आप फिर कौन हैं ?"''हैं तो कोई बड़े ही आदमी !"

"यह तो शहर के बड़े वकील साहिब होंगे"—मेरे कुछ उत्तर दे सकने से पहिले ही उसके साथी प्रौढ़ ने अपना अनुमान प्रकट कर दिया।

"अच्छा !"—प्रौढ़ा ने ठोढ़ी पर उंगुली रख फिर घूम कर अपने साथी की ओर देखा और बोली—"तो फिर ऐसे बड़े आदमी ही मुसीबत में कुछ मदद कर सकते हैं; क्यों भाई ? नहीं क्या ?"

"हां और क्या"—उसके साथी ने विज्ञता से समर्थन किया।

"क्यों, क्या हो गया ?"—मैंने सहानुभूति से पूछा।

"कुछ नहीं हो गया महाराज !"—गहरी सांस ले कुछ न छिपाने के भाव से दोनो हाथ पसार कर प्रौढ़ा ने उत्तर दिया—"होना क्या था ?''''''कुछ भी नहीं हो गया और फिर हो ही गया समझो !''''अरे, वही जो होता रहता है। होता तो रहता ही है ; लोग तो बात का बतंगड़ बना देते हैं। अब क्या कहें ? ''''वैसे हुआ तो कुछ भी नहीं ; पागलपन है और क्या ?"

"क्यों परेशानी क्या है ?"—प्रौढ़ा के संकोच और झिझक के कारण कौतुहल से मैंने अपना प्रश्न दोहराया।

"अरे महाराज, परेशानी क्या ?"—प्रौढ़ा ने भारी उत्तरदायित्व से उत्तर दिया—"परेशानी की बात क्या थी ? पर परेशानी ही हो गई न ? बात तो कुछ भी नहीं थी पर बात बन ही गई। मोती

ढोलिया की बहू है न ; उसे बहादुर ढोलिया अपने यहां ले गया। इतनी सी बात थी। उसकी रपट हो गई। अब कहेगी न सारे गांवकी नाक ? फ़जीहत के सिवाय क्या होगा ? झगड़े में सब लोग बंधे-बंधे फिरेंगे।"

दोनों हाथ उठा कर प्रौढ़ा ने समझाया—"बात तो सरकार इतनी सी ही है पर यह काम क्या इस तरह होते हैं ? महाराज, होता तो यही है ;...कहां नहीं होता ? राजमहल से लेकर कारी-कमीने की झोंपड़ी तक में यही होता है परन्तु महाराज सब बातों का एक ढंग तो होना चाहिए न !......सभी यह करते हैं।... किसने नहीं किया ?...क्या अपने वक्त में हमने नहीं किया; या तुमने नहीं किया ? पर एक ढंग होता है न !" —प्रौढ़ा विश्वास से मेरी आँखों में देखती हुई कहती गई—"महाराज, मर्द का क्या है ? वह तो भौंरा है, भौंरा ! उड़ता ही फिरता है। औरत ही है जो फूल की तरह खुली-खिली बैठी रहती है और उसे बुलाती है। महाराज, भौंरा खुला-खिला फूल देखेगा तो आयेगा ही ! उसका क्या बस ? यह तो औरत को ढंग होना चाहिए कि कैसे और क्या करना है। महाराज, इतनी उमर हो गई, क्या नहीं किया ?... क्या नहीं देखा ? पर यह ढंग होता है औरत का, कि सब हो जाये और किसी को कानों-कान खबर भी न हो।

"अब देखो न इन लोगों का फूहड़पन !...गाँव भर की फजीहत होगी की नहीं ? आदमी कोई जानवर तो है नहीं कि सींग दिखा कर या घुर्रा कर डरा देगा ! आदमी को तो आदमी के लिए जगह छोड़कर चलना पड़ता है न महाराज ! ...अब देखो, एक की हेकड़ी और फूहड़पन और सब की फजीहत ! देखो, उस मानी ढोलिया का पागलपन ! पागलपन नही तो और क्या है ?...लड़काई की उमर है न ? भले आदमी, तुझे बावड़ी का पानी मीठा लगता है तो अंजली भर-भर ढंग से पानी पी ; कि बावड़ी को ही पल्ले में बांधकर ले जायेगा ! उसमें न बावड़ी की शोभा, न तेरी अपनी !"

प्रौढ़ा दोनों हाथों से माथा ठोक निराशा से बोली।—"क्या कहना महाराज, कुछ कहते नहीं बनता और कहे बिना भी नहीं बनता। गांव भर की बात है न !" —प्रौढ़ा ने गहरी सांस ली— "पागलपन है और क्या !...पर जो पागलपन करे उसे तो पागल

समझ कर छोड़ देना ही ठीक है। आज नहीं तो कल ठोकर खा कर समझेगा! पर जंट साहिब को रपट मिली है तो वह गांव की फजीहत करेंगे ही।...यही तो उनका काम है। अफ़सर हैं न? अफसर तो मौका ढूँढते हैं। इसी के लिए शहर से चल कर इतनी दूर आयेंगे। महाराज, सरकारी नौकर तो मक्खी है। गंद को ढूंढ कर उसी पर बैठता है। मक्खी को गन्द न मिले तो मर जाए बेचारी! यही बात महाराज सरकारी अफसर की समझना। नहीं तो भले आदमी का यह ढंग थोड़े ही है! भला आदमी तो वह है कि दूसरे को उघड़ता देखे तो अपने पल्ले से ढांक दे... और क्या? पर अफसर तो महाराज उंगली फंसाने के लिये छेद ढूंढते हैं। कोई उन्हें खुद ही छेद दिखाये तो......"

प्रौढ़ा की बात से आरम्भ में हँसी की एक गुदगुदी मन में उठी थी। तब अपना कौतूहल पूरा कर सकने के लिए होंठ दबा कर अफसराना गम्भीरता से हंसी को छिपा लिया था। उसकी बात पूरी होने पर अपने दिल में उठी हंसी की गुदगुदी के प्रति लज्जा और ग्लानि अनुभव होने लगी। प्रौढ़ा ने भलमनसाहत की कसौटी ही ऐसी रख दी थी कि किसी की लज्जा और असुविधा पर हंसते संकोच हुआ।

प्रौढ़ा के प्रति सहानुभूति प्रकट कर घोड़े को ऐड़ लगा आगे बढ़ गया और सोचने लगा, समाज शास्त्रियों ने लिखा है कि सरकार एक अनिवार्य व्याधि है। इस सत्य को इस प्रौढ़ा से अधिक कौन 'समाजवादी' या 'अराजवादी' (Anarchist) अनुभव करेगा?...समाजवादी और अराजवादी केवल छपी हुई पुस्तकें पढ़ते हैं और यह प्रौढ़ा अनुभव की पुस्तक!

ग्यारह

पाँव तले की डाल

ब्रजनन्दन लखनऊ से वकालत पास कर अपने जिले में प्रेक्टिस करने लगा था। पिता की जमी-जमाई प्रेक्टिस थी। नन्दन ने उसे सम्भाल लिया। वह लखनऊ जाता तो निश्चित रूप से अपने पुराने सहपाठी डाक्टर बिहारीलाल माथुर के यहां ही ठहरता। युनिवर्सिटी में सहपाठी तो वे केवल दो ही वर्ष रहे थे लेकिन लखनऊ में दोनों अलग-अलग अर्थात् बिहारी डाक्टरी के कालेज में और ब्रजनन्दन युनीवर्सिटी और वकालत की कक्षा में रहते समय भी दोनों की गहरी जमती रही। अब भी दोनों मिलते तो वही 'अबे-तबे और 'तू-तड़ाक' से बात होती। लड़कपन में किये अनेक सुकर्मों और कुकर्मों को याद कर खूब जोर से हो-हो कर हंसते। इस बीच घट गयी कोई और घटना या विनोद की रहस्य पूर्ण बात याद आ जाती तो वह भी आपस में सुना डालते। पर्दा या संकोच उन दोनों के बीच अभी तक नहीं आया था।

इस बार ब्रजनन्दन अपने शहर के मित्र और बड़े ठेकेदार मुवक्किल निसन बाबू के एक मामले में अदालती काम से लखनऊ गया तो होटल में ठहरा। निसन से इस बारे में कुछ दिन पहले ही बात पक्की हो चुकी थी। "अब की रहेंगे !"—निसन ने ब्रज-नन्दन का हाथ दबा कर विश्वास दिलाया था।

निसन से ब्रजनन्दन की मित्रता पिछले ही बरस नैनीताल की ब्रिज पार्टियों में हुई थी। एक ही जिले के होकर भी वे पुराने परि-चित और सहपाठी नहीं थे। निसन की जिले के देहात में

जमींदारी है। वह इलाहाबाद में पढ़ा था। मिश्रा ने ब्रजनन्दन के लिए होटल में पहले से ही एक कमरा ठीक कर लिया था। वह कमरा होटल के दाहिने पंखे में, दूसरी मंजिल पर, एक ओर था। दूसरे मुसाफिरों के इधर आने-जाने और दखल की सम्भावना नहीं थी।

ब्रजनन्दन संध्या समय बाजार से लौटा तो सीढ़ियां चढ़ते समय चाल में उछाल-सी थी। उमंग और उत्साह उमड़कर उसके होठों से सीटी के रूप में निकल रहे थे। वह कोई लय गुन-गुनाता जा रहा था। दरवाजे के सामने पहुंचने से पहले ही हाथों ने पतलून की जेब से ताले की चाबी निकाल ली। कमरा खोल बाजार से खरीदे समान का बंडल बगल में दबाये ही उसने बटन दबाकर, बिजली जला कलाई की घड़ी पर नजर डाली। अपनी पाबन्दी की तारीफ़ में उसके मुँह से निकल गया—'साढ़े आठ!'''राइट!' बिहारी ने साढ़े आठ तक पहुँचने के लिए कहा था।

"खट खट!"—दरवाजे पर लटके भारी पर्दे के पीछे से किवाड़ों पर उंगली की ठोकर की धीमी आहट सुनायी दी।

"ओ गुड! जस्ट इन टाइम! कमइन (वाह, कैसे ठीक टाइम पर आये!) डाक्टर!"—ब्रजनन्दन ने आह्लाद से पुकारा। बगल में दबा बंडल पलंगपोश से ढंके बिस्तर पर पटक वह प्रत्याशित मित्र से लिपट जाने के लिए दरवाजे की ओर लपका।

पर्दे के पीछे से प्रकट हुआ होटल का बैरा। ब्रजनन्दन ठिठक गया और प्रश्नात्मक दृष्टि बैरे की ओर की।

बैरे ने साहब की झेंप को एक हल्के सलाम से ढंक हाथ में थमी बांस की टोकरी से एक मोहर बन्द बोतल निकाल कोने की मेज पर रख दी और उसके समीप ही बोतल की रसीद को बचे हुए दामों के नीचे दबा दिया।

"हुजूर कुछ और आयगा?"—बैरे ने हुक्म मांगा।

"हूँ" विचार के लिये ब्रजनन्दन ने होंठ काटा—"हाँ, सोडा गिलास'''दो गिलास और दो सोडा।"—आंख झपक ब्रजनन्दन ने कुछ सोचा और प्रश्न किया—"हमारे लिये किसी साहब ने फोन किया था?"

"हुजूर अभी तक तो कोई फोन नहीं आया।"

"फोन आये तो खबर देना। अभी तो सोडा लाओ!"

"हुजूर खाना किस वक्त लेंगे?"

"हम बता देंगे। तुम जरा नजदीक रहना।"

"हुजूर बहुत अच्छा। हुजूर घंटी बजायेंगे तो मैं फौरन सलाम करूँगा।"

बेरे के सलाम कर कमरे से चले जाने के बाद ब्रजनन्दन ने मेज पर से बोतल उठा उसका लेबल देख जरा होंठ सिकोड़ लिये। बोतल को मेज पर रख दिया। वह पलंग पर पड़े बंडल की ओर घूमा। बंडल में से एक खूब उजली बोतल निकाल इस बोतल के लेबल को शौक से देखा और पहली बोतल के समीप ही मेज पर टिका दिया। बण्डल की शेष चीजों को वह बायीं दीवार के साथ खड़ी आलमारी में सहेजने लगा। आलमारी के पल्ले मूंदते-मूंदते ठिठका और पल्ले फिर खोल सामान में से चमड़े के केस में बन्द पिस्तौल बाहर निकाल आलमारी को बन्द कर दिया।

बिजली की बत्ती के नीचे आ, मुख से धीमे-धीमे सीटी देते हुए उसने केस में से पिस्तौल निकाला और ध्यान से देखने के लिए ऊपर उठाया। उसी समय बाहर बरामदे में दरवाजे के सामने कदमों की आहट रुकी।

"यस?"—पिस्तौल थामे हाथ को नीचे कर ब्रजनन्दन ने पुकारा—"कौन?"

"कौन?"—उत्तर में प्रश्न को दोहरा पर्दे को झटके से हटाते हुये अचकन पायजामा पहने डा० बिहारी मुस्कराता हुआ भीतर आ गया—"तुम्हारे ताऊ!"—डाक्टर ने उत्तर दिया—"साले, पहचानता नहीं?....पूछता है, कौन?"

ब्रजनन्दन पिस्तौल पलंग पर पटक बिहारी से लिपट गया और फिर क्रोध दिखाया—"बड़ा मिजाज हो गया है साले?...... बड़ा भारी डाक्टर बन गया है? एक शाम के लिए हम लखनऊ आये हैं और जनाब फर्माते हैं, हमारे डिनर का प्रिवियस (पहले से) अपाइंमेंट है।"

बिहारी ने कमर अकड़ा, दोनों हाथ अचकन की जेबों में अंगाते हुए जवाब दिया— "साले, मिजाज हो गया है तुम्हारा ! ...होटल में ठहरते हैं। ...इतने बड़े साहब बन गये ? घर पर क्यों नहीं आये ?" क्रोध प्रकट करने के लिये डाक्टर ने त्योरियाँ चढ़ा कर पूछा।

"निरे पोंगे हो तुम ! फोन पर तुमसे कहा तो था, खास बात है"—ब्रजनन्दन ने मुस्करा कर डाक्टर का हाथ अपने हाथों में दबा लिया।

"ऐसी कौन बात है जो होटल में होगी, घर पर नहीं हो सकती ?"—डाक्टर ने सन्देह प्रकट किया।

"अबे बतायेंगे, उतावले क्यों हो रहे हो ! सांस लो ! बैठो तो" —उसने डाक्टर को दोनों बाहों से पकड़ दीवार के साथ लगी सोफा कुर्सी पर बैठा दिया।

"हूं ?...दो दो ?"—मेज की ओर दृष्टि जाने पर डाक्टर ने बोतलों की ओर संकेत कर अत्यन्त विस्मय प्रकट किया—"यह क्या हरकतें हैं बेटा ?...यह क्या तैयारियां है ?"

दूसरी हल्की कुर्सी डाक्टर के सामने खींच उस पर बैठते हुए ब्रजनन्दन ने उत्तर दिया—"अरे कुछ नहीं। कचहरी से लौट जब तुम्हें फोन किया था तो बाहर जाने से पहले बैरे को एक बोतल लाकर रखने के लिये कह गया था। निक्सन के साथ यह पिस्तौल खरीदने गया"—ब्रजनन्दन ने बिस्तर पर झुक कर पिस्तौल उठा डाक्टर के सामने कर दिया और कहता गया—"उससे कहा, तुम्हारे यहाँ लखनऊ आये हैं एक 'स्काच' दिखाओ। हमारे यहाँ तो भैया यह सब लुपजा है। एक लेते जांय। भैया, उसके बड़े-बड़े रास्ते हैं। साले ने झट दिखादी। अब तुम्हारे लिए दोनों हाजिर हैं !"

"साले तुम निक्सन के साथ स्काच ढूँढने के लिये बाजार घूम सकते थे; हमारे यहां नहीं आ सकते थे ?...हटो, हम तुम से बात करना नहीं मांगता। कमबख्त, हम तो तेरे लिए कावल छोड़ कर आये हैं। उस बेचारे ने सात दिन पहले से कह रखा था। सौ बहाने कर, अर्जेण्ट केस बता, बस एक पेग लेकर उठ आया हूं और

तुम्हारे यह मिजाज हैं कि लखनऊ के बाजारों में घूमो और हमारे यहाँ आकर सलाम न करो ! हटो, हम अभी जाते हैं'—डाक्टर ने क्रोध प्रकट कर उठने की तैयारी में कुर्सी की बाहों पर हाथ रखे।

"नहीं नहीं, यार"—ब्रजनन्दन ने डाक्टर को मनाने के लिए उसके घुटनों पर हाथ टेक दिये—'मेरी भी तो सुन ! जानता है, ग्यारह बजे तो गाड़ी पहुँचती है। हजामत-वजामत सब गाड़ी में की। यहाँ बिस्तर पटक, कपड़े बदल, कचहरी पहुंचा। उन सीनियर वकील साहब को मामला समझाया। तीन बजे केस शुरू हुआ। पांच बजे लौटते ही पहले तुझे फोन किया; तेरी कसम ! निरंजन से मिलना तो जरूरी था। उस से चेक जो लेना था और यह पिस्तौल खरीदा"—ब्रजनन्दन ने पिस्तौल डाक्टर के हाथ में दे दिया—"कैसा है ?"

"अरे हम क्या जानें पिस्तौल !"—डाक्टर ने पिस्तौल को हाथ में तौल कर उत्तर दिया—"गोली तो नहीं है इसमें ?"

"नहीं, गोली नहीं है। अलग रखी है। चलाना जानते हो ?"

"उहूँ"—डाक्टर ने पिस्तौल को मेज पर फेंक दिया।

इस के लाइसेंस की तारीख ही खतम हुई जा रही थी। दो तीन जरूरी दवाइयां भी लेनी थीं। हमारे देहात में मिलता ही क्या है !...बस तू यह समझ कि पांच मिनिट के लिये बहन से मिलने भी नहीं जा सका। तुझे मैंने लिखा तो था, उस ने बनारस से एम० ए० पास किया है। उसे यहां लड़कियों के कालिज में जगह मिल गयी है और रहने के लिये भी उसे वहीं कमरा मिल गया है। सुबह छः की गाड़ी से लौट न जाऊं तो वहाँ सेशन में दो बजे कैसे हाजिर होऊं ? कत्ल का एक मामला लगा हुआ है। कचहरी से फुरसत मिलते ही, पहले तुझे ही फोन किया......"

"तू घर आ जाता"—विहारी ने फिर विरोध किया—"फुर्सत में रात भर जगती।...यहाँ पैसा बरबाद करने से फायदा ?"

"यही तो तू नहीं समझता ! मवक्किल का काम, मवक्किल का खर्च ! तिस पर यह तो निरंजन का निमंत्रण है,"—विहारी का

हाथ अपने हाथों में दबाते हुए नन्दन बोला—"एक बात और है जो घर पर नहीं हो सकती …"

"हूँ"—दोनों बाहें सीने पर समेटते हुए डाक्टर ने अनुमान प्रकट किया—"तमाशबीनी ?"

"अब समझे बेटा !"—गर्दन टेढ़ी कर अजनन्दन ने स्वीकार किया—"इसमें भी तो कभी-कभी चेंज होना चाहिये !"

"अभी यह हरकतें जारी हैं ?…कुछ ख्याल करो ! लड़के के बाप हो गये हो !…चेंज का शौक चर्राया है ! साले यहाँ होटल में बाजारू औरत से बीमारी समेट ले फिर आना मेरे पास, डाक्टर इंजेक्शन लगा दे !…साले कभी इलाज नहीं करूंगा तेरा !"

"शुंशा जी, अभी कुछ रोज दुनिया देखो !…बड़े लखनौआ बनते हैं। अबे जो बाजार में टके सेर बिक रही है उसका क्या शौक ?"

"तो"—डाक्टर ने भौं सिकोड़ प्रश्न किया—"आपके लिए बाजार से नहीं आसमान से हूर नाज़िल होगी ?"

"अमा हट !"—अजनन्दन हाथ से मक्खियां सी उड़ाते हुए बोला—"क्या चुगलों की सी बातें करता है ! बना है, डाक्टर ! दुनियाँ में क्या नहीं होता ?"

"अच्छा !"—भांपने के ढंग से सिर हिलाते हुए डाक्टर ने पूछा—"तो कोई पुरानी आशनाई है ? बेटा, फिक्सड-अकाउण्ट घर में रखते हो, यहाँ लखनऊ में करेन्ट अकाउन्ट खोल रखा है ?"

"अजी हटाओ, यह इश्क की सिर दर्दी बन्दा नहीं पालता कि मजनूं बने फिर रहे हैं।"

"मियां चुगद बन रहे हो तुम !"—अपने ऊपर डाला गया लांछन लौटाने के लिये हुए डाक्टर बोला—"जो तुम्हारे लिए यहां आ जायगी, वह बाजारू न हुई तो क्या होगी ?"

"बस ! गधा है बिलकुल…"—किवाड़ों पर उंगली की आहट सुन अजनन्दन रुक गया और पर्दे की ओर दृष्टि कर उसने गम्भीर स्वर में पुकारा—"कौन ?"

बैरा एक किश्ती में सोडे की बोतलें और गिलास लिए भीतर

आया। बिना कुछ बोले बैरे ने सामान एक छोटी मेज पर टिका मेज दोनों के बीच में रख दी। जेब से बोतल खोलने की चाबी निकाल उसने बोतलों के समीप रख दी और ब्रजनन्दन को सम्बोधन किया—"हुजूर कोई प्लेट हाजिर करूँ ?"

"क्या है ?"

"हुजूर कबाब, फ्राई, आमलेट, सलाद; जो कहें। खाना भी तैयार है।"

ब्रजनन्दन ने अंगरेजी में डाक्टर से पूछा—"तुम क्या पसन्द करोगे ? मैंने तो खाना दोपहर बाद बेवक्त खाया है।"

"कुछ भी, सलाद भी मंगवा लो।"

"दो प्लेट कबाब, एक आमलेट और सलाद"—ब्रजनन्दन ने बैरे को हुक्म दिया। बैरे के चले जाने के बाद उसने डाक्टर से पूछा—"स्काच खोलूं या यह दूसरी ?"

"क्या फरक पड़ता है"—डाक्टर ने हाथ फैलाकर उपेक्षा प्रकट की—"फरक तो पहले ही पेग में मालूम होता है। जहाँ कुछ चढ़ी तो इतनी तमीज ही कहाँ रह जाती है ? एक पेग चौधरी के यहाँ से पी आया हूँ। भला आदमी माना ही नहीं।...अब जो हो ! रंगे कपड़े पर रंग का क्या पता चलता है ! जो तुम चाहो। आज बहुत रंग में आ रहे हो। बात क्या है ?"

"स्काच खोलूं !"

"क्या फायदा !"—डाक्टर ने फिर उपेक्षा दिखायी—"रख लो। मुश्किल से मिलती है। कभी किसी जज-वज को पार्टी देनी होगी तो काम आयेगी। मैं दूसरी चीज ले चुका हूँ। दो चीजें मिल जाने से कभी गड़बड़ भी हो जाती है।"

"आलराइट"—ब्रजनन्दन ने दूसरी बोतल उठा सील मोहर तोड़ बोतल खोल डाली। दो गिलासों में दो-दो उंगली की उंचाई तक ह्विस्की डाल उसमें सोडा छोड़ दिया। एक गिलास डाक्टर को थमा दूसरा स्वयं ऊंचा उठाते हुये बोला—"बेस्ट लक !" (शुभ हो !)

"तैयारी तो मेरा बैड लक (अशुभ) की ही कर रहे हो"—

डाक्टर ने नन्दन की ही तरह गिलास ऊंचा उठाते हुये चेतावनी दी।

"ऐसा क्यों बकता है बे!"—घूंट भर ब्रजनन्दन ने त्योरियाँ चढ़ा कर पूछा।

"वी० डी० (सूज़ाक-आतशिक) समेटने आये हो। बेटा, ऐसा शौक है तो अपने बजुर्गों की तरह दो बीवियां रखो, चार रखो, दस रखो!"—डाक्टर नसीहत के स्वर में कहता गया—"अन-जाने तालाब में डुबकी लगाने में सदा आशंका! जाने कब मगर पांव थाम ले!"

"बड़े दाना बन रहे हो मुंशी जी!"—ब्रजनन्दन ने डाक्टर की सावधानी का मजाक किया—"तुमसे कह तो दिया बजारू नहीं है। यह तो नित्तन से पहले ही शर्त हो चुकी है। सुशिक्षित और सम्मानित समाज की! समझे पट्ठे! अबे साथ सो लेना ही तो सब कुछ नहीं है! संगत और सुहल में ही असली मजा है। बीबी का क्या है? दो हुई या चार! बीवी तो बीवी है, जैसे पहाड़ी लोग कहते हैं—'वही बिस्तर वही सुपने!' उसमें थ्रिल (उमंग) क्या? वृद्ध आदमी, इस प्रजातंत्र और स्त्रियों के समान अधिकार के जमाने में दो और दस बीवियों का सुपना देख रहे हो। अरे एक को ही सन्तुष्ट रखना मुश्किल! वह ज़माना लद गया जिस्त्री के मन और सन्तोष का सवाल ही नहीं था। ठाकुर साहब को जचती गयीं, वे उन्हें रनिवास में समेटते गये। हिन्दू कोडबिल ऊपर से चला आ रहा है, मुंशी जी क्या समझो? समता और प्रजातन्त्र के ज़माने में शौक और इश्क भी समता और प्रजातन्त्रात्मक ढंग से ही पूरा होना चाहिए!"

"क्या कहने?"—विद्रूप से हाथ फैला कर उत्तर दिया डाक्टर ने—"यह जो पेट की मुसीबत की मारी आपके शौक के लिए चली आ रही हैं; प्रजातन्त्र, स्वतन्त्रता और समता का ही तो आनंद लेगी?"

"जानता तो कुछ है नहीं, बके जायगा? इश्क बाजारू है?"—नन्दन ने आग्रह से प्रश्न किया—"जैसे हमें शौक है, औरत को शौक नहीं होगा? सुन"—नन्दन ने डाक्टर का कन्धा छूकर

समझाया—"निलस को नहीं जानता तू ? एक ही हरामी है। उसने जाने कितनी पटा रखी हैं। दो-दो कारें हैं साले के पास। रोज़ की पार्टी बाजी। बेइमान की सब जगह पहुँच है। उसने आज के लिये दो से अपाइण्टमेंट किया हुआ है। वे लोग यहाँ नौ बजे आयेंगे। एक-एक पेग यहाँ लेकर 'रेलवे इंसटीच्यूट' के डांस (सम्मिलित नाच) में चले जायेंगे या किसी दूसरी जगह। जैसा मौका हो; या जहाँ तुम कहो !"

"हिश्त !"—सिर हिला कर डाक्टर ने अंग्रेजी में कहा—"मुझे क्या मतलब ! मैं तुम लोगों के साथ नहीं जाऊंगा।"

"क्यों !—नन्दन ने त्योरियाँ चढ़ा डाक्टर की ओर देखा परन्तु दरवाज़े से आहट पा चुप हो गया। बैरा एक बड़ी किश्ती पर कबाब, आमलेट और सलाद की प्लेटें लिये भीतर आया। उसकी उपेक्षा कर नन्दन अपनी घड़ी की ओर देखते हुए अंग्रेजी में बोला—"नौ तो बज रहे हैं। देखो !"—और उसने बैरे को सम्बोधन किया—"तीन गिलास और तीन सोडा और दे जाओ !"

बैरे के बाहर जाने पर नन्दन के माथे की त्योरियाँ फिर उभर आयीं—"क्यों, तू क्यों नहीं चलेगा हमारे साथ ?"

"वेश्याओं से मुझे नफरत है।"

"उल्लू है। किसने कहा वे वेश्या हैं ? पढ़ी-लिखी भले घर की लेडीज़ ! जिसको चाहे वेश्या कह दिया ?"

"कौन भला परिवार अपनी स्त्रियों को ऐसे आने देगा ?"

"तेरा मतलब है, औरतें सोसाइटी में बाहर न निकलें ? बड़ा दकियानूसी आदमी है !"

"मेरी बीबी किसी के शौक और चेंज के लिए आये तो मुझे अच्छा लगेगा ?"·"तेरी बीबी आये तो अच्छा लगेगा ? तुम्हारे लिए औरतों की आजादी का मतलब है, दूसरों की स्त्रियों को आपका शौक पूरा करने की आजादी ! अपनी बीबी को तो ताले-चाबी के भीतर 'फिक्सड अकाउण्ट' में बन्द रखो दूसरों की औरतों से 'करेंट अकाउण्ट' चलाओ ! दुनिया में बस एक तुम्हीं तो छैले हो न ? कोई तुम्हारे ही कानफाड़ से ? तुम साले अपने पांव तले

की डाल काट रहे हो ! समझते हो, दूसरों को गिरता देखकर हंसोगे ? क्यों बेटा ?"

"ओफ ओ बड़ा बुजुर्ग बन गया है"—नन्दन कह रहा था परन्तु बरामदे में जूतों की खट-खट की आहट पाकर बोला—"निरान आता होगा..."

"हलो, वकील साहब ?"

"आइये, आइये !"—बीच की तिपाई नन्दन के रास्ते में अड़ रही थी। उसे एक ओर हटा वह स्वागत में पर्दा उठाने के लिए दरवाजे की ओर जाने का यत्न कर रहा था। वह तिपाई को रास्ते से हटा ही पाया था कि निरान ने भीतर आ पर्दा उठा, पीछे की ओर घूम दरवाजे के बाहर, खड़ी दो युवतियों को सम्बोधित किया—"आइये ! आइये !"

आधुनिक भद्र वेशभूषा में दो युवतियों ने आगे-पीछे कमरे में प्रवेश किया। डाक्टर भी सम्मान-प्रदर्शन के लिए उठ खड़ा हुआ। निरान ने मुस्करा कर पहले भीतर कदम रखने वाली युवती का परिचय दिया—"मिस रावल !"—और दूसरी युवती की ओर संकेत किया—बोला—"मिसेज सक्सेना !"

ब्रजनन्दन का परिचय युवतियों से कराने के लिए निरान ने उसकी ओर आंखें की परन्तु अवाक् रह गया। एक ही क्षण में ब्रजनन्दन का चेहरा विस्मय और क्रोध से पथरा गया था। निरान को अवाक् रह जाते देख डाक्टर ने भी ब्रजनन्दन की ओर देखा और फिर उसकी दृष्टि मिस रावल की ओर गई। वह आंखें झुकाये कांप रही थी। जान पड़ता था, लड़खड़ा जायगी।

डाक्टर ने एक बार फिर ब्रजनन्दन, मिस रावल, निरान और मिसेज़ सक्सेना की ओर निगाह डाल समझने का यत्न किया और नन्दन की खाली कुर्सी को खींच मिस रावल को सम्बोधन किया—"आप बैठ जाइए ! आप सीढ़ियों पर बहुत थक गयी हैं।"

डाक्टर ने ब्रजनन्दन की ओर देखा। वह पलट कर मेज की ओर जाना चाहता था। इस बार फिर वही तिपाई उसके आड़े आ गयी। डाक्टर ने लपक कर मेज पर से पिस्तौल उठा लिया।

हँसने की चेष्टा कर उसने निरन को सम्बोधन किया—"यह देखिये निरन बाबू, नन्दन यह पिस्तौल हमें भेंट कर रहे हैं। अरे भाई, हम डाक्टर आदमी। हमारा काम है, जख्मी का इलाज करना, किसी को जख्मी करना नहीं।" डाक्टर ने पिस्तौल अपनी अचकन की जेब में डाल लिया।

ब्रजनन्दन ने होंठ काट लिये और दोनों हाथ पतलून की जेब में धँसाकर चुप रह गया। निरन भकभकाया हुआ कभी इधर, कभी उधर देख रहा था। मिसेज़ सक्सेना खड़ी-खड़ी रूमाल से हवा कर अपने चेहरे का पसीना सुखा रही थीं। उलझन में उनसे बैठने का भी अनुरोध किसी ने नहीं किया। उस ओर देख डाक्टर बोला—"ओफ! आप खड़ी हैं? निरन बाबू, आप को कुर्सी दो न! हां, आज सचमुच बड़ी गर्मी है। क्या अजीब मौसम हो रहा है!"—उसने दीवार की ओर बढ़ बिजली के पंखे का स्विच घुमा दिया। निरन और नन्दन अब भी खड़े थे। डाक्टर ने उनसे आग्रह किया—"आप लोग भी बैठिये! खड़े क्यों हैं?"—नन्दन को उसने अपनी कुर्सी पर बैठा दिया और स्वयं निरन के साथ पलंग की पटिया पर जा बैठा।

डाक्टर ने निरन और मिस रावत को एक साथ ही सम्बोधन किया—"नन्दन तो आप लोगों की प्रतीक्षा कर रहे थे कि दिन से बढ़िन से मिलने का समय नहीं मिला। आप लेकर आते होंगे। वर्ना घर लौट कर क्या जवाब देंगे? लखनऊ गये और मिलकर नहीं आये!"

निरन ने रूमाल से चेहरे का पसीना पोंछ कलाई की घड़ी की ओर देख बात सम्भाली—"हां, देर हो गई। पर पहले टाइम ही नहीं मिला।"

बैरा एक किश्ती में सोडे की तीन बोतलें और गिलास लिये दरवाजे में दिखायी दिया। डाक्टर ने आगे बढ़ ट्रे उसके हाथ से ले ली—"ठीक है, थोड़ी देर में आना।" बैरे को लौटा डाक्टर ने ट्रे तिपाई पर टिका दी।

"आप बहुत थक गयी हैं"—डाक्टर ने मिस रावत के समीप आकर कहा—"सीढ़ियां तेजी से चढ़ी होंगी। देखूं, आपकी नब्ज देखूं!"—मिस रावत की नब्ज अपनी उंगलियों से टटोल कर

डाक्टर बोला—"धड़कन बढ़ गयी है। आप थोड़ा पानी पी लीजिए?" एक गिलास में बहुत थोड़ी सी ह्विस्की डाल उसे सोडे से भर डाक्टर ने मिस रावल की ओर बढ़ाया—"लीजिये !"

मिस रावल ने इनकार में सिर हिलाते हुये गिलास हाथ से परे हटा दिया।

"मैं डाक्टर हूँ। आपको दवाई दे रहा हूँ"—अधिकार से डाक्टर ने कहा।

"नहीं, नहीं !"—मिस रावल ने सिर गिलास से पीछे हटा लिया—"मुझे बदबू मालूम होती है।"

डाक्टर ने दूसरे गिलास में निरा सोडा डाल उन्हें थमा दिया। दो चार घूँट ले, गला तर हो जाने पर वे बोलीं—"जाने कभी कभी क्या हो जाता है मुझे? "दिल डूबने सा लगता है। जब भी तेज चलती हूँ ऐसा हो जाता है।"—मिस रावल आवाज से बीमार मालूम हो रही थीं—"निरतन बाबू ने कहा, भाई साहब आये हैं। अवन्ती होटल में ठहरे हैं। सुबह जरूर चले जायेंगे। मैंने कहा, मैं इसी समय चलूँगी।"

"हाँ" - डाक्टर ने सिर खुजाया—"नन्दन भी परेशान था। कह रहा था, निरतन बाबू ने आपको लिवा लाने के लिए कहा था। इतनी देर हो गयी है; अब आप कैसे आ सकेंगी? सुबह आप से मिलने का समय न होगा। गाड़ी बहुत सवेरे चली जाती है।" —उसने नन्दन की ओर देखा—"अब तो तुम सुबह बेफिक्री से गाड़ी पकड़ सकते हो।"

डाक्टर को नन्दन से बात करते देख मिसेज सक्सेना ने संकेत से निरतन का ध्यान आकर्षित कर धीमे से कहा—'बहुत देर हो जायगी !'

"हाँ"—निरतन ने समर्थन के लिए अपनी घड़ी की ओर देखा।

डाक्टर ने उनका अभिप्राय समझ कर भी नन्दन को सम्बोधन किया—"यह भी क्या आना हुआ? "सी बीच" फिल्म की बड़ी तारीफ सुनी है। सब लोग साथ-साथ देखते! खैर अब टाइम ही नहीं है।" -अपनी घड़ी पर नजर डाल वह बोला—"इन लोगों को देर हो रही है। सुनो तुम सुबह से बहुत थक गये हो, क्या

तकलीफ करोगे ? मुझे तो उसी रास्ते जाना है । बहिन को मैं पहुँचा दूँगा । तुम परेशान न हो !"—वह उठ खड़ा हुआ ।

सब लोग उठ खड़े हुए । नन्दन भी उठा परन्तु चुप ही रहा । चलते-चलते डाक्टर ने घूम कर कहा—"आज तो पिस्तौल जेब में है । गाढ़ी अंधेरी रात का मामला है । देखें, काम आता है या नहीं ? और अगर आज इसकी जरूरत साबित न हुई तो तुम्हारी भेंट कल ही लौटा दूँगा । यह भी क्या भेंट है !"—अपनी जेब की ओर निरंजन का ध्यान आकर्षित कर डाक्टर ने कहा—"कि पास रखने में डर लगे ? यह डर से क्या बचायेगी ? और कमबख्त जेब अलग फटी जा रही है ।···चलिये अब !"—उसने मिस रावल को सम्बोधन किया ।

× × ×

ब्रजनन्दन की बहिन को कालेज के हाते तक पहुँचा कर जब डाक्टर होटल लौटा तो नन्दन के कमरे की बिजली वैसे ही जल रही थी । वह कपड़े बदले बिना पलंग पर लेटा दोनों हाथ सिर के नीचे दबाये छत की ओर टकटकी लगाये था । मेज पर बोतल गिलास और सब सामान वैसे ही पड़े थे ।

"नन्दन"—डाक्टर ने पुकारा ।

नन्दन ने उसकी ओर देखा और मौन रह गया ।

"निरंजन से बहिन का परिचय हुआ कैसे ?"

नन्दन ने अज्ञान के संकेत में हाथ हिला दिया ।

"अब आदमी बनो ।"—डाक्टर कुछ कड़े स्वर में बोला—"अभी घण्टे भर पहले तुम क्या कह रहे थे ? अफसोस मुझे भी है लेकिन अगर मिस रावल की जगह मेरी बहिन होती और तुम न पहचानते ? सभी औरतें किसी न किसी की बहिन, बेटी या स्त्री होती हैं ।···बहिन को भी तुम्हारी तफरीह पर एतराज हो सकता है ?···मर्द होने का मतलब बेशर्मी का अधिकार नहीं है । तुम जनतन्त्र और समानता की बात करते हो ? जनतन्त्र और समता के समाज में वही नैतिकता और तफरीह चल सकती है जो सब के लिए सम्भव हो·········। पांव तले की डाल काटने का मजाक करो तो गिरने पर रोओ मत ।"

साहूर

साहू और चोर

मित्र को देहली पहुँचने की सूचना तार द्वारा दी हुई थी। बम्बई-मेल स्टेशन पर डेढ़ घण्टे लेट पहुंची। यह भला न लगा कि मेरे डेढ़ घण्टे लेट पहुँचने से उनके यहाँ चाय-नाश्ते का और दूसरा सब प्रबन्ध दुबारा करना पड़े। अपना संक्षिप्त सा सामान वेटिंगरूम में छोड़ स्टेशन के भोजनालय में नाश्ता कर लिया। वेटिंगरूम में लौट कर बज़ुर्ग बैरे मियां से एक कुली पुकार देने का अनुरोध किया।

चलते समय सिगरेट सुलगा लेने की इच्छा हुई। केस में सिगरेट समाप्त हो चुके थे। सूटकेस खोल नया टीन निकाल कर काट रहा था। वेटिंगरूम का दरवाज़ा खुला। एक भद्रवेश युवक भीतर आया। वह राख के रंग की हल्की ऊनी पतलून और खाकी कोट पहने था। अखबार हाथ में रूल की तरह लिपटा हुआ थमा था।

यात्रा में भी वह युवक कुछ स्टेशनों पर दिखाई दिया था। जब ट्रेन लम्बी दौड़ के बाद किसी स्टेशन पर थमती तो मैं बैठा-बैठा ऊब जाने के कारण चहलकदमी के लिये प्लेटफार्म पर उतर आता। वह युवक भी अखबार पढ़ता हुआ या वैसे ही चहलकदमी करता मेरे पास से गुज़र जाता। हमें एक दूसरे से मतलब न था इसलिये आँखें मिल जाने पर भी, एक दूसरे को घूरने से बचने के लिये, सज्जनता से आँखें फेर लेते। मेरे नाश्ता करते समय बम्बई-मेल पंजाब की ओर चली जा चुकी थी। अनुमान किया, इसे शायद यहाँ गाड़ी बदलनी है। वेटिंगरूम में बैठ कर प्रतीक्षा करेगा।

युवक वेटिंगरूम में आते समय मेरी ओर ही देख रहा था। आंखें मिल गईं। समीप आ कुछ झिझक से उसने अंग्रेजी में मुझे सम्बोधन किया—"अगर आप एक मिनिट बैठें तो कुछ बात करना चाहता हूँ!"

उसके स्वर और मुद्रा में झेंप और विवशता जान पड़ी। मन में सहसा कल्पना कर ली; बात क्या? यही बात होगी, "गाड़ी से उतर, फाटक पर जा टिकट देने के लिये जेब में हाथ डाला। सावधानी के लिये टिकट बटुए में रख लिया था।···बटुआ ही गायब! शर्म के मारे कुछ कह नहीं सकता। ·····मेरा पता लिख लीजिये। एक भद्रलोक के नाते जो सहायता आप करेंगे, उससे उऋण होना अपना नैतिक कर्तव्य समझूँगा। आदि, आदि।" सज्जनता और दया के नाम पर लूटने वाले, छलिया भद्र लोगों का पूरा चित्र सहसा कल्पना में फिर गया। ऐसे आदमी भद्र लोगों का यह कर्तव्य समझते हैं कि भद्र श्रेणी के सम्मान की रक्षा के लिये सब लोगों को उनकी छलना का शिकार बनना चाहिये।

मन में उठी वितृष्णा को दबा, भद्र लोगों की सज्जनता की मुद्रा की रक्षा के लिये सिगरेट का ताजा कटा टीन युवक की ओर बढ़ाकर उत्तर दिया—"अवश्य!···लीजिये, सिगरेट लीजिये!"

युवक ने धन्यवाद दे सिगरेट ले लिया और बिलकुल मेरे पास की कुर्सी पर बैठ मेरे सिगरेट सुलगा लेने की प्रतीक्षा में, हाथ में थमे अखबार को रूल की तरह लपेटते हुए उसने क्षमा सी मांगी—"आप पधारिये, मुझे एक ही बात पूछनी है।"

कुछ विस्मय हुआ। एक सिगरेट अपने होठों में दबा कर माचिस जला पहले उस की ओर बढ़ाते हुए पूछा—"आज्ञा कीजिये।" उसने सिगरेट सुलगा कर मुझ से बैठने का अनुरोध दोहराया। अब अनुमान किया, शायद गुप्तचर-पुलिस का आदमी है! बैठ कर मैंने फिर पूछा—"कहिये!"

मेरी आँखों में देखते हुए उसने अंग्रेजी में आश्वासन दिया—"मेरी बात से परेशान न होइये।"—और फिर झिझकते हुए बोला—"मैं पूछना चाहता हूँ, क्या आप के पास हज़ार-हज़ार के चालीस नोट हैं?"

शरीर में बिजली सी कौंद गई। पहली आशंका यही हुई कि बात करते-करते उसने पिस्तौल निकाल लिया होगा। पिस्तौल दिखाई नहीं दिया। मन में दूसरी आशंका तड़प गई, टटोल कर देख लूं, कि नोट सुरक्षित हैं या नहीं! परन्तु सुरक्षा की सावधानी ने ही इस इच्छा को दबा दिया।

वेटिंगरूम में हम दोनों ही थे। मुझे अकेला देखकर ही तो वह आया होगा। भद्र लोगों के कायदे से परिचित बजुर्ग बैरा दरवाज़े से झांक, दो भद्र पुरुषों को समीप बैठकर आपसी बात करते देख ओट में हो गया था। अपनी घबराहट छिपाने के लिये, सिगरेट के धुयें से आंखें चरचराने के बहाने पलकें सिकोड़ मैंने प्रश्न से उत्तर दिया—"क्या?...मैं समझा नहीं।...कैसे नोट?"

पहले की अपेक्षा अधिक स्थिरता से युवक ने समझाना चाहा —"अगर आपके पास चालीस हज़ार रुपया है और आप भय के कारण इनकार कर रहे हैं तो एक आदमी की जान व्यर्थ में, निरपराध चली जायगी!"

युवक की बात से सान्त्वना पाने की अपेक्षा घबराहट ही बढ़ी। उत्तर दिया--"किस की जान?...कैसा चालीस हज़ार? तुम्हारा मतलब क्या है?"

मेरी घबराहट युवक से छिपी न रही। अपनी कुर्सी मेरी ओर सरका कर सिगरेट से कश खींचते हुए वह बोला—"आप घबराइये नहीं। अगर आपके पास रुपया है तो भी अब आपको कोई खतरा नहीं। मैं केवल जानना चाहता हूं कि मुझे धोखा तो नहीं दिया गया। बम्बई से आते समय आपको 'मनमाड' में तीन सौ रुपये में बेचा गया था। उसके बाद मैंने आपको 'इटारसी' स्टेशन पर दो सौ रुपये में खरीदा है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि हम लोगों को धोखा तो नहीं दिया गया?"—युवक सिगरेट से कश खींचता हुआ उत्तर की प्रतीक्षा में मेरी ओर देखता रहा।

उसके हाथ में पिस्तौल या छुरा न देख और इस बीच कुर्सी पर करवट ले अपने पास रकम सुरक्षित जान मैंने कुछ क्रोध से उत्तर दिया—"मेरे पास कोई रुपया-वुपया नहीं है और तुम विचित्र आदमी हो?...मुझे बेचने और खरीदने का मतलब?...तुम खुद

डकैती और कत्ल करो और धोखे की शिकायत भी करो ? तुम्हारे जैसे आदमी को तो पुलिस के हवाले किया जाना चाहिये !"

सिगरेट को तर्जनी उंगली की तरह चेतावनी में उठाकर उसने मुझे टोक दिया—"पुलिस में मेरी शिकायत करने से कोई लाभ नहीं !···उसका प्रबन्ध हम लोग पहले से रखते हैं। आपको ही व्यर्थ कष्ट होगा। आपकी जेब तो कटी नहीं! शिकायत किस बात की कीजियेगा ? धोखा हुआ है तो मेरे साथ ! परन्तु मैं अपने साथ धोखे के लिये पुलिस के सामने गिड़गिड़ाने नहीं जाऊंगा। ऐसे धोखे और अन्याय का दण्ड देना पुलिस के अधिकार और सामर्थ्य में है भी नहीं। पुलिस इस न्याय को स्वीकार नहीं करती। ऐसे अन्याय का दण्ड हम लोग स्वयं देंगे लेकिन आप भय न होने पर भी अपने पास रुपया होने से इनकार करेंगे तो अन्याय हो जायगा।"

ऐसे साहसी और स्पष्टवादी व्यक्ति से भरोसा और सान्त्वना पा कर भी मैं अपने पास इतनी बड़ी रकम होना स्वीकार न कर सका उल्टे उससे पूछा— "यह सब क्या चक्कर है ?···मैं कुछ समझ नहीं सका ?···मेरे पास रुपया होने या न होने से तुम्हें क्या मतलब ?···मेरे पास रुपया न होने से किसी की जान क्यों जायगी ?"

मुझे विश्वास दिलाने के लिये हाथ उठाकर युवक बोला—"आपने कल एक बजे बैंक से हजार-हजार के चालीस नोट लिए थे !···आप बैंक से सीधे स्टेशन पर आगे थे !···नोट लेकर आपने अपने कोट के भीतर की जेबों में रखे थे ! टिकट आपने स्वयं नहीं खरीदा। आपके नौकर या मुँशी ने खरीद कर दिया था। इतना ठीक है ?" अपने विषय में इतने सच्चे ब्यौरे से बात सुन घबराहट और भी बढ़ी परन्तु विस्मय प्रकट कर दुहाई दी—"जाने तुम किसकी बात कर रहे हो ?···किसका रुपया ?···मुझे व्यर्थ में क्यों घसीट रहे हो ?"

मेरे उत्तर से युवक की असुविधा और दुश्चिन्ता और बढ़ गई। उसने मुझे फिर समझाना चाहा—"बैंक से जिस आदमी ने आप का पीछा किया था, वह मनमाड स्टेशन तक आपके साथ आया था। वहां उसकी सीमा समाप्त हो गई। उसका कहना है कि बम्बई से गाड़ी छूटने के समय तक रुपया आपके कोट की भीतर

की जेब में ज़रूर था। उसके बाद आपने चाहे जहां रख लिया हो? मनमाड में उस ने आप को तीन सौ रुपये में दूसरे आदमी के हाथ बेच दिया। यह दूसरा आदमी इटारसी तक आपके रुपया रखने का स्थान आपने की कोशिश करता रहा। इटारसी तक असफल रह कर उस ने मुझ से बात की और एक सौ का नुकसान उठा कर उसने आपको दो सौ रुपये में मेरे हाथ बेच दिया। मैं सब यत्न कर हार गया हूं लेकिन जान नहीं पाया कि आपके पास रुपया है तो आपने कहां रखा है? आपके कोट की जेब में केवल एक नोट एक सौ का और दस-दस के दो तीन नोट हैं। आपके कोट और पतलून में चोर जेबें नहीं हैं। आप मारवाड़ियों की तरह कमीज़ के नीचे जेबदार बंडी नहीं पहने हैं। आपकी कमर में तागड़ी भी नहीं है। आपने रुपया जूते में नहीं रखा, वर्ना रात में सोते समय आप जूता उतार कर नीचे न छोड़ देते। रुपया आपने सूटकेस या बिस्तर में रख दिया होता तो आप निश्चिन्त होकर टहलने के लिये स्टेशनों पर न उतरते या नाश्ता करने के लिये सामान को बेपरवाही से न छोड़ जाते। मैं यह भी नहीं पूछना चाहता कि रुपया आपने कहां रखा है? यह मैं स्वयं जानने की कोशिश करूंगा। मैं केवल जानना चाहता हूँ कि हम लोगों को धोखा तो नहीं दिया गया। अपनी असफलता के लिये मैं दो सौ का नुकसान उठा लूंगा। यदि दो सौ में चालीस हज़ार पाने का दांव लगाया जा सकता है तो ऐसे दांव में दो सौ के नुकसान का ग़म भी न होना चाहिये! पर दांव, दांव है और धोखा, धोखा है! हम लोगों में यदि धोखा होने लगे तो एक दिन काम नहीं चल सकता। पहले से आपका पीछा करने वाले आदमी को आपका दाम चुकाये बिना मेरा आपकी ओर आंख उठाना भी अनुचित होता। बात यह है कि बम्बई से आपका पीछा करने वाले आदमी पर कुछ दिन पहले भी धोखा देने का सन्देह हुआ था। यदि उस ने इस बार सचमुच धोखा दिया है तो उसे दण्ड अवश्य मिलना चाहिये। इस समय मैं गिरोह का नायक हूँ। धोखा देने वाले को दण्ड देना मेरा कर्त्तव्य है। निर्णय आपके सच बोलने पर निर्भर करता है।"—उत्तर की प्रतीक्षा में वह मेरी ओर घूरता रहा।

मुझे झिझकते देख उसने अनुरोध किया—"विश्वास कीजिये,

अब आप को नुकसान का भय नहीं है। परन्तु निरपराध का खून होना भी उचित नहीं और अपराधी को दण्ड न मिलने से व्यवस्था नहीं रह सकती।"

सम्मानित जज कैसे यह बोल एक अपराधी के मुंह से सुन मुझे ताव आ गया—"तुम स्वयं अपराध में डूबे हो"—मैंने उत्तर दिया—"तुम से बड़ा अपराधी कौन है? तुम दूसरे को अपराध का दण्ड दोगे? अगर तुम मेरी जेब काट लेते तो यह क्या निरपराध का खून न होता?......मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है?...बोलो?"—मैंने क्रोध से उसे चुनौती दी।

"यह आप दूसरी बात कह रहे हैं"—शान्ति से उसने उत्तर दिया। समाप्त हो गये सिगरेट को फर्श पर फेंक, सैण्डल से दबाते हुए और जेब से कैप्सटन सिगरेट की डिबिया निकाल पहले मेरी ओर बढ़ा और फिर एक सिगरेट होठों में दबा भौं सिकोड़ कर वह बोला—"यह आप बहुत गहरी बात कह रहे हैं। अगर ऐसे सोचें तो सभी बातें अपराध मानी जायंगी। आदमी जिन्दा ही न रह सकेगा। अपराध तो अपने-अपने समाज में मान लिये गये ढंग और नियम के अनुसार ही समझा जाता है, बुरा न मानिये। अच्छा आप बताइये, यह चालीस हजार आपने किस ईमानदारी से कमाया है? यह आपके परिश्रम की कमाई है या आपकी चतुरता की?...बोलिये!"

जाने क्यों; उसकी कड़वी बात का उत्तर देने की इच्छा समझिये या उसके पूर्ण विश्वास से बात करने के ढंग के कारण मैंने उत्तर दिया—"यह मेरा रुपया नहीं है। मैं तो फर्म में नौकर हूँ। रुपया फर्म का है। मैं तो अपने काम के लिये तनखा पाता हूँ।"

"ओह यह बात!"—सिगरेट से राख झाड़ कर कश खींचते हुए वह बोलता गया—"आपकी फर्म से भी तो सवाल पूछा जा सकता है कि उन्होंने यह रुपया किस ईमानदारी से कमाया है? अधिक मेहनत करने से अधिक रुपया मिलता हो; ऐसी बात भी नहीं। आप इतना रुपया लेकर दिल्ली जरूर इसलिये आये होंगे कि इस रुपये से फर्म के लिये और अधिक रुपया, दो चार लाख रुपया कमाने का जुगाड़ किया जाय? शायद आप कोई ठेका लेना चाहते हैं? या कोई बड़ा सौदा खरीद कर गोदाम में बन्द कर

देना चाहते होंगे ! इन सब कामों को आप ईमानदारी का परिश्रम कहेंगे या चतुरता ? "आपकी फर्म के मालिक तो इस काम में कुछ मेहनत करेंगे नहीं ?"

"क्यों नहीं करेंगे ?"—उसकी नासमझी पर मैंने टोका—"तुम क्या जानते हो ?"'चालीस हज़ार क्या है ?"'यह तो केवल ठेका लेने के लिये नज़र या रिश्वत है। इसके बाद तो फर्म को इस काम में दस-पन्द्रह लाख की पूंजी लगानी पड़ेगी। घाटा भी हो सकता है ? क्या इसमें रिस्क नहीं ? "क्या नासमझी की बातें करते हो ? यह सब सोचने और करने में दिमाग का तेल पसीना बन कर माथे पर निकल आता है......"

"यही तो मैं कहता हूँ"—युवक ने होठों से धुएं की लम्बी फुफकार छोड़ते हुए टोका—"मैंने दो सौ रुपये का रिस्क लिया या नहीं ?"'कहिये ? मैंने घाटा उठाया या नहीं ? यदि मैं आपकी जेब से नोट उड़ाते समय पकड़ लिया जाता ?" उस हालत में मुझे पुलिस को निश्चित मासिक से पाँच सौ-हज़ार और अधिक देना पड़ता। जेल ही कारनी पड़ जाती। हम लोग कम बुद्धि और मेहनत खर्च नहीं करते। आप बाज़ार को भांपते हैं। हम आसामी भांपते हैं ! हम अपनी भांप सकने की शक्ति और उंगलियों और कदमों की फुर्ती पर निर्भर करते हैं। उदाहरणतः आप टिकट लेने के लिये भीड़ में दबे हों। रुई का एक फाहा आपके दांये कान के पीछे छुला दिया जाय ! आपका दांया हाथ खुजाने के लिये उठेगा और आपके कोट का पल्ला उठ जायगा। इसी बीच में आपकी भीतर की जेब से नोट खींच सकता हूँ। कहिये, आप इतनी सफ़ाई से काम कर सकते हैं ? आपके तरीके दूसरे हैं। आपकी फर्म भांप लेती है कि किस चीज की कमी से लोगों को परेशानी होने वाली है। फर्म वही चीज अधिक जमा कर, लोगों की परेशानी बढ़ा उनकी जेब से खूब रुपया खींच लेती है। या आपकी फर्म बाज़ार में दस लाख रुपये की मूंगफली बेचने के लिये लहा-कर भाव गिरा देगी। गिरे हुए भाव पर सचमुच बीस लाख की खरीद लेगी। भाव चढ़ेगा पर आप माल रोके रहेंगे। लोगों को अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिये उचित से अधिक दाम देने के लिये मजबूर करेंगे। यह भी लूट का तरीका है। आपका साधन है,

आपकी पूंजी। कुछ लोग छुरी मार कर आसामी को विवश कर रुपया छीन लेते हैं। आप अपनी पूंजी से आदमी को विवश करते हैं। हम लोग छुरी मार कर या सेंद लगा कर रुपया लेना जहालत और जंगलीपन समझते हैं। अपने तरीके को बुद्धि और चतुरता का वैज्ञानिक ढंग।

"सुनिये"—एक लम्बा कश खींच कर वह बोलता गया—"दो साल पहले १९४३ में मैं कलकत्ते में चावल की व्यापारी फर्म में नौकर था। फर्म ने चावल खरीद-खरीद कर महंगाई कर देने के तरीकों से छः मास में तीन करोड़ रुपया कमा लिया। फर्म तो चावल पैदा नहीं करती। लोगों से सस्ता चावल खरीद कर उन्हें महंगे दामों लौटाने के खेल में फर्म ने तीन करोड़ रुपया कमा लिया। इसे आप ईमानदारी कहेंगे या चतुरता? और सुनिये; काम मैं और मेरे जैसे लोग करते थे। फर्म हमारी मार्फत लाखों बना रही थी। मुझे मिल रहे थे केवल सवा सौ और भत्ता! कम्पनी हम से दूसरों की जेब कटवा रही थी और बदले में हमारी जेब काट रही थी। समाज के सम्पूर्ण कारोबार का मूल मंत्र सस्ता खरीद कर महंगे से महंगा बेच देना है, कम मज़दूरी देकर माल बनवाना और माल को अधिक से अधिक दाम पर बेचना! लेकिन इस धोखे को निबाहते रहने के लिये धोखे के नियमों के प्रति ईमानदारी आवश्यक है। ऐसे कारोबार में भी जब आप से चावल के दाम लेकर कंकर की बोरियां सप्लाई कर दी जायें तो आप धोखे के लिये दण्ड देना चाहेंगे या नहीं? यही बात आप हमारे बारे में समझ लीजिये। हर समाज में दूसरों की जेब से रुपया निकालने के कुछ स्वीकृत ढंग होते हैं। उन्हीं के अनुसार चलना होता है। ऐसे नियम न मानने से दूसरों को लूटने की व्यवस्था भी ठीक से नहीं चल सकती।"

युवक के सीना ज़ोरी से चोरी का समर्थन करने के ढंग में आत्माभिमान का भाव झलक रहा था। मैंने उसी पर चोट करनी चाही—"धोखे और चोरी से दूसरे का धन छीन लेने के लिये अभिमान भी किया जा सकता है, यह आज पहली बार देख रहा हूं।"

वह मेरी चुटकी से झेंपा नहीं और बोला—"आप चोरी की बात करते हैं ? दूसरे का धन ले लेना चोरी है ? बुरा न मानिये, धन तो वास्तव में मेहनत करने वाले किसान मज़दूर ही पैदा करते हैं। शेष सब व्यवसाय उस धन को पैदा करने वालों के हाथों से अधिक से अधिक मात्रा में हथिया सकने की चतुरता ही है। अलबत्ता धोखे के कुछ तरीकों को समाज स्वीकार करता है और कुछ को अपराध ठहरा दिया गया है। जो लोग निर्वाह करने के समाज द्वारा स्वीकृत तरीकों में स्थान नहीं पाते, वे चील-कौए की तरह छीना झपटी से निर्वाह करते हैं।"—अपना आधे से अधिक समाप्त हो गया सिगरेट फर्श पर डाल सेंडल से कुचलते हुए उसने मुस्करा कर कहा—"मैं आपके प्रति कृतज्ञ हूं। आप ने मुझे बहुत घृणित और कठिन काम से बचा दिया।"

युवक की सफ़ाई और व्यवहार का मन पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि सहानुभूति प्रकट किये बिना न रह सका। समझाना चाहा—"तुम इतने पढ़े लिखे और समझदार नौजवान हो, इस प्रकार के घृणित कामों में फंस कर तुम्हें आत्मग्लानि अनुभव नहीं होती ?"

युवक के हाथ अभ्यास के अनुसार डिबिया से नया सिगरेट निकालने लगे और उसने अत्यन्त विस्मय से मेरी आंखों में आंखें गड़ा कर प्रश्न किया—"किस बात के लिये आत्मग्लानि ?...... क्यों ?......मैं क्या कर रहा हूँ ?"

"तुम्हें अपने असामाजिक कामों के लिये लज्जा नहीं अनुभव होती ? तुम क्या अपने काम की बाबत भले आदमियों में सफ़ाई से बात कर सकते हो ?" उसकी आंखें खोलने की आशा से सहानुभूति प्रकट की।

होठों पर आ गई मुस्कराहट को दबाने के लिये वह क्षण भर चुप रह गया और फिर बोला—"आप भला आदमी किसे समझते हैं ?" भला आदमी वह है जिसका आदर हो। आदर रुपया खर्च कर सकने से होता है। मैं बुराई क्या करता हूँ ? हां, जेब काटना आप बुरा समझते हैं !...हम लोग लाखों में से किसी एक की जेब काटते हैं। बार-बार शायद किसी की जेब नहीं काटते। जेब काटने का अर्थ है, दूसरे की कमाई छीन लेना। बताइये, हज़ारों

आदमियों के श्रम या कमाई का धन उनकी जिन्दगी भर उनसे छीनते रहना भलमनसाहत है? हम लोग आपस में मिलते हैं तो बड़े गर्व से अपनी सफलता की बात करते हैं परन्तु आप लोगों के सामने कैसे कर सकते हैं? हां, क्या जर्मनी, इंगलैण्ड या रूस लड़ाई के अपने रहस्य दूसरों को बता सकते हैं? क्या आप अपनी कंपनी के तरीके और रहस्य दूसरी कंपनियों को बता सकते हैं? आखिर इस युद्ध में बड़े-बड़े सेनापति क्या कर रहे हैं? वे जितना अधिक नरसंहार कर सकें, दूसरे देश का जितना अधिक धन छीन सकें, उतनी ही उनकी प्रशंसा है। व्यापार की होड़ का भी यही अर्थ है। आखिर यह युद्ध हो क्यों रहा है? इसीलिये न कि संसार के दूसरे देशों को लूटने का अधिक अधिकार किसे है? हम लोग भी वही करते हैं जो हमारे समाज के आर्थिक जीवन का नियंत्रण करने वाले कर रहे हैं। अन्तर यह है कि दूसरे का धन छीन लेने के कुछ तरीकों को उन्हों ने स्वीकृति दे दी है, कुछ को अपराध करार दे दिया है।' यह केवल मान लेने की बात है। देखिये न एक समय बाबर सेना लेकर इस देश का धन छीन लेना अपना अधिकार समझता था। आज अमेरिका-इंगलैण्ड व्यापार की राह वही बात कर रहे हैं! दूसरे का धन छीन लेने के जिन दावों में आप लोग, कच्चे हैं, जिनमें आपको मात खाजाने का डर है, उनसे आप खिसिया जाते हैं। असल में खेल की मूल बात तो वही है, दूसरे के श्रम का फल चतुरता से हथिया लेना! परन्तु एक तरीके को साहू का तरीका मान लिया गया है और दूसरे को चोर का।"

इसी बीच प्लेटफार्म पर एक गाड़ी आ कर खड़ी हो गई थी। वह कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। उस ओर संकेत कर युवक ने कहा —"क्षमा कीजिये, ज़रा सी बात के लिये मैंने आपका इतना समय बरबाद कर दिया। मुझे इस गाड़ी से लौटना है।"

युवक की बातों से दुख हो रहा था और उसे प्रकट किये बिना न रह सका—"अफसोस है, तुम्हारी जैसी बुद्धि के व्यक्ति की ऐसी दुर्दशा हो रही है। तुम समाज के लिये कितने उपयोगी हो सकते थे?"

"देखिये, दया न दिखाइये!"—मुस्कराहट से उसने चेतावनी दी—"दया की भीख मांगने से उकता कर ही मैंने यह मार्ग

पकड़ा है। मेरी जैसी बुद्धि या मुझसे भी प्रखर बुद्धि और ईमानदार व्यक्ति भी इस समाज में साधनों की मालिक श्रेणी की सेवा के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता। चाहे वह कितना बड़ा "महात्मा" या "पण्डित" हो! मालिक श्रेणी की दासता ही साहूपन है और विरोध चोरी!" भौं सिकोड़ और गूढ़ विचार में सिर के बालों में उंगलियां चलाते हुए उसने कहा—"कामरेड लोग कई बातें ठीक कहते हैं परन्तु तथ्य उन में भी कुछ नहीं। वह साधनहीनों की लीडरबाज़ी है। एक तमाशा है! एक झक है! वे कहते हैं, मेहनत करने वालों का ही राज कायम हो जाना चाहिये। मज़दूर का राज हो जायगा तो वो कड़ी मेहनत करेगा क्यों? और क्या हम लोगों की जिन्दगी में ऐसा हो सकता है? मैंने पहली चोरी बाप के इलाज के लिये की थी। चोरी कर, रुपया ले जब मैं घर पहुँचा, बाप मर चुके थे। उनका कुछ न बना। ऐसे ही अगर हम लोग कामरेडों का आन्दोलन करते-करते मर जांय तो बाद में मज़दूर राज हो जाने से हमें फायदा? यह अच्छा खासा मज़ाक है। कामरेड केवल बात करता है। केवल पूंजीपति को गाली देता है। न उसे मारता है और न उसका पैसा छीनता है। इसीलिये मैं उनका विश्वास नहीं करता! हाँ, गाड़ी जा रही है! धन्यवाद!"—वह लपक कर प्लेटफार्म पर खड़ी ट्रेन की ओर बढ़ गया।

उसके मुंह फेरते ही मैंने एक बार फिर चालीस हज़ार के नोटों को संतोष से टटोला। वे सुरक्षित थे। सन्तोष का श्वास लिया, मैं साहू हूं, चोर नहीं! यह रुपया फर्म की अमानत थी और इसे ग्यारह बजे, टेंडर खुलने के समय से पहले ही, ठेका देने वाले अधिकारियों के पास पहुँचा देना आवश्यक था।

तेरह

इसी सुराज के लिये ?

'तस्वीर-महल' के घन्टाघर से साढ़े दस बजे की टंकोर सुन लेने के बाद से निरंजन व्याकुल होने लगा। काली रात से अधिक घने काले पेड़ों की चोटियों पर से तस्वीर महल के घन्टाघर की बड़ी घड़ी धुंधले प्रकाश के थाल के समान चमक रही थी। निरंजन बार-बार उस ओर देख रहा था। लखनऊ के साथियों ने निरंजन को आश्वासन दिया था कि कानपुर में क्रान्ति का काम बढ़ाने के लिये वे उसे दो बम देंगे। इसीलिये वह कानपुर से आया था और लखनऊ में चौक के पास, विक्टोरिया बाग में बम मिलने की प्रतीक्षा कर रहा था। बम लाने वाले व्यक्ति के ठीक दस बजे आने की बात थी। निरंजन निश्चित स्थान पर कभी बैठ जाता और कभी टहलने लगता। दस क्या ग्यारह भी बज गये। वह निराश हो कर चलने को ही था कि बाग के बीचोंबीच गुजरने वाली सड़क, पर ठीक उसके सामने आकर दो मोटर साइकिलें और एक लारी खड़ी हो गई और उन पर से बिजली की टार्चें लिये सशस्त्र सिपाही कूद पड़े।

निरंजन के चोटी से एड़ी तक बिजली कौंद गई और उसी फुर्ती से वह समझ गया कि पुलिस उसी की तलाश में आई है। चौबे पकड़ा गया होगा और उसी से पुलिस को उसके यहाँ प्रतीक्षा करने का पता चला होगा। वह फुर्ती से बाग के पीछे की झाड़ियों में घुस गया। बाग और चौक के बीच की सड़क पर फांद कर

सामने 'बागवाली' गली में तेज़ कदमों से चल दिया। टार्चों की रोशनी उसकी पीठ पर पड़ी और पीछा किया जाने की आहट भी आई। वह सिर पर पांव रख भाग निकला। एक गली से दूसरी में होता हुआ चौक के बाज़ार पहुँचा।

रात के सवा ग्यारह बजे बाजार बन्द हो चुका था। कहीं-कहीं केवल हलवाई या पनवाड़ी की दुकान खुली थी। बाज़ार में दौड़ना उचित न था। यहां दौड़ने से ही लोगों का ध्यान उसकी ओर जाता। पुलिस पीछा कर रही थी। उस समय सूने बाज़ार में दिखाई देने वाले सभी आदमियों की तहकीकात हो सकती थी। निरंजन अनजाने स्थान में आत्मरक्षा के लिये कातर हो उठा। चौक दरवाजे की ओर मोटर साइकिल की गरज सुनाई दी। वह बांई ओर की गली में घूम गया और गली के शुरू में ही एक दरवाज़ा खुला देख उसमें घुस गया। दरवाज़ा दुमंजिले पर बने कमरे के जीने का था। जीने से ऊपर बांई ओर के कमरे में खूब उजाला था। निरंजन ने सोचा कि पुलिस पैट्रोल के आगे निकल जाने तक वहीं छिप जाये। पराये मकान में घुस निरंजन ने पुलिस के ध्यान से बचने के लिये उसका दरवाज़ा भी उड़क देना चाहा।

दरवाज़े को उड़क देने के लिये निरंजन का हाथ उठा ही था कि उस पर प्रकाश पड़ा। घूम कर देखा, जीने के ऊपर लालटैन हाथ में लिये एक स्त्री खड़ी है और उसकी ओर देख रही है। निरंजन घबराया कि स्त्री अपरिचित के मकान में घुस आने से भयभीत हो चिल्ला न पड़े! परन्तु स्त्री की निर्भय आवाज़ सुनाई दी—"आइये, आदाबअर्ज़ है! जनाब, तशरीफ़ लाइये!"—स्त्री पान भरे मुंह से कहती गई—"आपको अंधेरे में जहमत हुई। अभी-अभी बस दो मिनिट के लिये रोशनी उठा ली थी। आइये!"

निरंजन ने परिस्थिति भांपी और सान्त्वना अनुभव की। मन में उठी ग्लानि को दबा समयानुकूल व्यवहार करने के निश्चय से उसने स्त्री के अदाबअर्ज़ का उत्तर लखनवी ढंग से ज़रा गर्दन झुका और हाथ को अदा से उठा कर दिया। उसने जीने के ऊपर खड़ी वेश्या की ओर देख अनुमति मांगी—"इजाज़त हो तो दरवाज़े में सांकल लगा दूं!"

"हो जायगा। आप क्यों तकलीफ़ कीजियेगा"—उत्तर मिला—"कल्लन आकर सांकल लगा देंगे। आप तशरीफ़ ले आइये!"

निरंजन दरवाज़े में सांकल लगा जीना चढ़ गया। बाईं ओर के कमरे में बिजली की रोशनी थी। आराम और सजावट का सामान जुटाने का फूहड़ और असमर्थ सा प्रयत्न दिखाई पड़ रहा था। एक ओर हरे रंग के फूलदार पलंगपोश से ढंका पलंग लगा हुआ था और दूसरी ओर एक बहुत पुराने ढंग का सोफ़ा जिसकी गद्दी का रंग चिकनाई और मैल से ढंक गया था। फर्श पर एक रंग, उड़ी हुई पुरानी दरी बिछी थी।

स्थान की मालिक वेश्या का संकेत पा निरंजन गलाज़त और गन्दगी के प्रति घृणा तथा बेतकुल्लफ़ी दिखाता हुआ सोफ़े पर बैठ गया। वेश्या ने छत से लटका रुका हुआ बिजली का पंखा चला दिया और बाज़ार में खुलने वाली खिड़कियों पर बंधी चिकें पर्दे के लिये खोल दीं। पलंग के समीप तिपाई पर रखा पानदान उठा वह निरंजन की ओर आ गई। सोफ़े पर बैठ उसने पानदान अपने और निरंजन के बीच रख पान लगाते हुए आत्मीयता से मुस्करा एक आंख दबा कर पूछा—"कुछ शौक कीजियेगा?... अबेर तो हो गई है लेकिन कल्लन ले ही आयेंगे। मुआ अड्डे पर एक रुपया फालतू ले लेगा; और क्या?"

निरंजन को अपनी ओर विस्मय से चुप देखते देख वेश्या ने पल भर भांपा और फिर मुस्करा कर बोली—"साहबज़ादे, क्या नया शौक कर रहे हैं?...ऊपर आते भी सहम रहे थे। ऐसी क्या बात है? तसकीन रखिये! यह शरीफ़ लोगों की जगह है।"

"नहीं तो"—निरंजन ने गर्दन ऊंची कर साहस दिखाया—"वाह ऐसी क्या बात है!"—और फिर अपनी जेब से सिगरेट की डिबिया निकाल वेश्या के सामने कर बोला—"शौक कीजिये!"

वेश्या ने मुस्करा कर आदाबअर्ज़ किया और सिगरेट स्वीकार कर फिर आदाबअर्ज़ किया और कहती गई—"पीने का शौक नहीं करते? अच्छा ही है। सेहत बरबाद होती है और पैसा भी।"—पान लगाना छोड़ उसने माचिस जला कर निरंजन के सामने की। उसके सिगरेट सुलगा लेने पर उसने अपनी सिगरेट सुलगा ली।

पान के बीड़ों की जोड़ी दोनों हाथों से निरंजन के सामने पेश कर बोली—"आप तुबिस्ते से तशरीफ़ रखिये। थकान मालूम होती होगी; पलंग पर लेट जाइयेगा ?"

"नहीं मैं आराम से…"—निरंजन उत्तर दे रहा था कि नीचे बाजार में बहुत से लोहा लगे बूटों से दौड़ने की आहट सुनाई दी और कड़कती हुई ऊंची आवाज़ों में ललकार—"ठहरो! ठहरो!" और साथ ही बन्दूक की गूंज!

वेश्या खिड़की की ओर लपकी। वह देखने के लिये चिक उठा ही रही थी कि निरंजन ने उसका हाथ थाम पीछे खींच लिया।

वेश्या ने विस्मय से प्रश्न में निरंजन की ओर देखा। निरंजन ने होठों पर मौन के संकेत के लिये उंगली रख दी। वेश्या विस्मय से निरंजन की ओर देखती रह गई।

"बांध लो इसे भी!"—नीचे से साफ़ सुनाई दिया। किसी के गिड़-गिड़ाने की आवाज़। कुछ प्रश्नोत्तर! साथ ही बहुत ज़ोर से वेश्य के जीने के खटकाये जाने की आहट हुई।

"कल्लन से कहूं, खोले…"—वेश्या ने घबराहट में कहा।

निरंजन वेश्या के बिलकुल समीप हो कातर स्वर में बोला—"पुलिस मुझे पकड़ने आई है। मुझे बचा लीजिये!"

वेश्या की आंखें विस्मय से फैल गईं। उसने निरंजन को सिर से पांव तक देखा और अपने आप को वश में कर हाथ का पंजा दिखा धीमे स्वर में उत्तर दिया—"पाँच सौ लूंगी!"

किवाड़ों पर और ज़ोर की चोट सुनाई दी। निरंजन चुप रह गया। वेश्या ने दरवाज़े से जीने में झुक कर पुकारा—"ऐ कल्लन मियाँ!" और निरंजन को बांह से पकड़ जीने में ला दीवार के साथ खड़े कर कमरे के दरवाजे का किवाड़ उसके सामने कर दिया! नीचे जीने के किवाड़ और भी ज़ोर से खट-खटा उठे।

"आ रही हूँ जनाब! ज़रा तसकीन कीजिये!"—वेश्या ने उत्तर दिया और लालटैन हाथ में ले जीना उतर गई। निरंजन दम रोके किवाड़ के पीछे खड़ा रहा। नीचे के किवाड़ खुले। वेश्या की आवाज आई—"आइये, आइये जनाब! आह, दारोगा साहब! तशरीफ़ लाइये!"

"कौन मुनीर ?"

"हाँ हुजूर मैं हूं बांदी !"

"ऊपर कौन है ?"

"कोई नहीं हुजूर तशरीफ़ लाइये !"

"चिक से कौन झांक रहा था ?"

"हुजूर की बांदी थी। बड़ा खौफ मालूम हुआ। दरोगा साहब कोई संगीन वारदात हो गई ? तशरीफ़ लाइये ! एक बीड़ा पान हाजिर...."

"मुनीर, इधर बाज़ार से कोई भाग कर तो नहीं निकला ?"

"अल्ला सलामत रखे। बांदी क्या कह सकती है ? हुजूर आप की दुआ से खिड़की में थोड़े ही बैठती हूँ ?"

निरंजन को आहट से जान पड़ा कि जीने के सामने खड़े हो बात करने वाले लोग हट रहे हैं। मुनीर की आवाज़ फिर सुनाई दी—"नज़रेइनायत बनाये रखियेगा दारोगा साहब ! खुदा हाफिज !" जीने में सांकल लगने की आहट हुई। मुनीर के ऊपर आने की आहट हुई। वह दो-तीन मिनिट अपने कमरे में निश्चल बैठी रही। कमरे में बिजली बुझ गई। निरंजन के सामने से किवाड़ हटा और फुस-फुसाहट सुनाई दी—"आ जाओ !"

निरंजन कमरे में चला गया। बाज़ार की रोशनी चिकों से छन कर कमरे में हलके प्रकाश की धारियां से डाले हुए थी। मुनीर ने निरंजन के समीप आ धीमे स्वर में प्रश्न किया—"माजरा क्या है साहबजादे ?"

निरंजन कुछ उत्तर न दे सका। मुनीर ने फिर रहस्य के स्वर में प्रश्न किया—"डकैती करके भागे हो या कत्ल करके आये हो ?"

"मैं न डाकू हूँ, न कातिल !"—बहुत धीमे परन्तु दृढ़ स्वर में निरंजन ने उत्तर दिया—"हम लोग मुल्क और कौम की आज़ादी के लिये, सब लोगों की आज़ादी की लिये, अंग्रेजों के ज़ुल्म के खिलाफ़ लड़ रहे हैं। इसलिये पुलिस हमें गिरफ्तार करना चाहती है।"

मुनीर चुप रह गई। निरंजन को उसके व्यवहार में निराशा और परेशानी जान पड़ रही थी। उस ने धीमे स्वर में समझाना

चाहा—"अंग्रेज़ हमारे मुल्क का, हमारी कौम का खून पी रहे हैं। उनकी गुलामी में हमारी कौम भूखी और नंगी तड़प रही है। दुनिया में हमारी कौम का मुंह काला हो रहा है। हम लोग अपने मुल्क की आज़ादी और खुशहाली के लिये, अपने मुल्क में अपने लोगों का राज कायम करने के लिये लड़ रहे हैं।"

"हम नहीं जानते"—धीमे स्वर में मुनीर ने झुंझलाहट प्रकट की—"हमने कह दिया था, हम पांच सौ लेंगे। हां! हमने कितना खतरा झेला है? हम पकड़े जाते तो हमारी कितनी बेआबरूई होती? तुम रुपया नहीं दोगे तो हम अभी बाज़ार से सिपाही को पुकार लेंगे। सच्ची!"—मुनीर निरंजन को धमका कर उस की ओर घूरती रही।

"तुम पांच सौ रुपया चाहती हो?"—निरंजन ने साहस कर मुनीर से पूछा—"पांच सौ रुपया क्या सारे मुल्क और कौम की आज़ादी से भी अच्छा है? मेरे पास रुपया नहीं है। मैं केवल अपनी जान दे सकता हूँ। मेरी जान हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिये है। अगर पांच सौ ही लेना है तो मुझे गिरफ्तार करवा कर ले लो! लेकिन तुम क्या हिन्दुस्तानी नहीं हो? हम लोगों को अपने लिये कुछ नहीं चाहिये। हम लोग आज नहीं तो कल या तो अंग्रेज़ और उसकी पुलिस की गोली से मारे जायंगे या पकड़े जाने पर फांसी चढ़ा दिये जायेंगे। हमारी शहादत का फायदा मुल्क और कौम को, तुम्हारे जैसे लोगों को होगा। हम लोग मुल्क से गैर क़ौम की गुलामी हटा कर अपने लोगों का राज कायम करने के लिये लड़ रहे हैं ताकि सब लोगों को ईमान और इज़्ज़त से रोज़ी कमाने और ज़िन्दा रहने का मौका हो! तुमने भगतसिंह का नाम सुना होगा? उन्होंने अंग्रेज़ों के ज़ुल्म के खिलाफ़ दिल्ली के लाट की कौंसिल में बम चलाया था। उन्हें अंग्रेज़ों ने फांसी पर चढ़ा दिया तो सारे मुल्क में ग़मी की हड़ताल हुई थी। हम लोग उन्हीं के साथी हैं।"

"वाह"—मुनीर हाथ में अच्छी बड़ी रकम आने की खिन्नता में पलंग पर पांव लटका कर बैठ गई और मुंह बिचका कर बोली—"काले आदमी से तो अंग्रेज़ ज्यादा इन्साफ़ करता है। अंग्रेज़ का डर न हो तो काले आदमी एक दूसरे को खा जायं!"

निरंजन धीमे स्वर में बात कर सकने के लिये उसकी ओर बढ़ गया और समझाने लगा—"अंग्रेज़ की नौकरी और गुलामी में काला आदमी बेइन्साफ़ी और ज़ुल्म इसलिये करता है कि अंग्रेज़ काले आदमी को ज़ुल्म कराने के लिये ही नौकर रखता है। यह काले आदमी की ग़रीबी और बेबसी ही है जो उसे अंग्रेज़ की ग़ुलामी में ज़ुल्म करने के लिये मजबूर करती है। देखो बहन, बुरा न मानना, तुम मज़बूर न होतीं, तुम्हें दूसरे बाइज़्ज़त तरीके से गुज़ारे का मौका मिलता तो बाज़ार में तुम कभी न बैठतीं। सारे मुल्क और क़ौम की यही हालत है। हम लोग ग़ैर क़ौम की ग़ुलामी में बेईमानी करके, बेइज़्ज़ती के टुकड़ों पर गुज़ारा करने के लिये मजबूर हैं। नहीं तो हमारे मुल्क में किस बात की कमी है! अंग्रेज़ भर पेट खाने के लिये पाता है इसलिये इन्साफ़ करने का ग़रूर भी कर सकता है।"

मुनीर चुपचाप सोचने लगी और फिर बोली—"अंगरेज़ का राज क्या कभी हट सकता है?"

"क्यों नहीं"—निरंजन ने उत्साह से उत्तर दिया—"अंग्रेज़ में दम ही कितना है? वह हमारे मुल्क पर इसी मुल्क के लोगों से अपनी हुकूमत चलवा रहा है। अंग्रेज़ के मुल्क की आबादी ही कितनी है? वह तो चालबाज़ी और धूर्तता से हम पर राज कर रहा है। हमारा ही नादान भाई अंग्रेज़ की तरफ़ से हम पर बन्दूक चलाता है। मुल्क में हज़ार पीछे एक-एक आदमी हम लोगों की तरह हथेली पर सिर लेकर निकल आये तो अंग्रेज़ यहां एक दिन नहीं टिक सकता। अब हमारा वक्त आ गया है। तुम्हें मालूम नहीं हजारों हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने बगावत करदी है और नेता जी ने आज़ाद हिंद फौज बना कर आसाम में अंग्रेज़ों पर हमला कर दिया है। देखो, यह कितना बड़ा जंग चल रहा है? अंग्रेज़ अपने मुल्क पर हिटलर का राज बर्दाश्त करने के लिये तैयार नहीं लेकिन हम अपने मुल्क में आज़ादी मांगते हैं तो हमें ग़द्दार कह कर हम पर गोली चलाता है, हमें फांसी पर लटका देता है। तुम से क्या परदा, तुमने मेरी जान बचाई है, अगर मैं इस वक्त पकड़ा जाता तो तुम कल ही अखबार में देखतीं! अखबारों में रोज़ ही अंग्रेज़ों से हमारी लड़ाई की बातें रहती हैं लेकिन इसमें हमारा अपना क्या फ़ायदा? हम

न जमीन-जायदाद और न नौकरी—चाहते हैं। हम तो चाहते हैं, हमारा मुल्क और कौम बरबादी से बचे !"

"अरे वो क्या, भला सा नाम है साहबज़ादे, हां ! तुम कांग्रेस वाले हो क्या ?"—मुनीर ने ठोड़ी पर उंगली रख और माथे पर चिन्ता की रेखा डाल अनुमान प्रकट किया—"कांग्रेस वाले भी तो अंग्रेज़ों के खिलाफ़ जुलूस निकालते हैं। पुलिस उन्हें भी डंडे मार कर जेल में ले जाती है। वो भी तो आज़ादी चाहते हैं। वो भी तो कहते हैं, अंग्रेज़ को हटा कर आम जनता का राज कायम करेंगे। नहीं क्या ?"

"ठीक तो है ; तुम तो समझती हो।"—निरंजन ने सांत्वना से कहा—"कांग्रेस वाले बेचारे मुंह से स्वराज की बात करते हैं और अंग्रेज़ उन्हें अपनी नौकर पुलिस से पिटवा कर जेलों में बंद कर देता है। तुम तो जानती हो, कांग्रेस वाले कोई चोरी डकैती मार पीट नहीं करते। अपने मुल्क में अपना राज मांगते हैं। हम कांग्रेस वालों से बढ़ कर हैं। अंग्रेज़ हमारे मुल्क के निहत्थे लोगों की जायज़ मांग पर गोली चलाते हैं तो हम अंग्रेज़ की गोली का जवाब बम से देते हैं। समझीं...?"—निरंजन कोशिश कर रहा था कि राजनैतिक बातों से अजान वेश्या को देश की स्वतंत्रता के लिये क्रान्ति की बात समझा कर उसकी सहानुभूति पा ले।

"हां साहबज़ादे"—एक गहरी सांस लेकर मुनीर ने पूछा—"प्यास लगी होगी ? कुछ पानी-वानी नहीं पियोगे ?"—निरंजन ने एक गिलास पानी मांगा। मुनीर ने कमरे के कोने से सुराही और शीशे का गिलास उठा कर निरंजन को पानी पिलाया।

वह सोफ़ा पर बैठ पान लगाने लगी और जम्हाई दबा कर बोली—"इस वक्त घर से निकलोगे तो राह में ज़रूर पकड़ लिये जाओगे। तुम पलंग पर सो जाओ। हम सोफ़ा पर लेट रहेंगी या यहीं फर्श पर कुछ बिछा लेंगी"—उसने पान का बीड़ा निरंजन की ओर बढ़ा दिया।

निरंजन मुनीर की उदारता से कुछ झेंप गया—"नहीं, आप अपने पलंग पर लेटिये। मुझे नींद नहीं मालूम हो रही है। मैं सोफ़ा पर बैठ रहूँगा।"—उसने कहा।

"यह कैसे हो सकता है, साहबज़ादे ? तुम तो ताज़ीम के क़ाबिल मेहमान हो !"—मुनीर ने गम्भीरता से उत्तर दिया और पलंग के सिरहाने की आलमारी खोल कर एक हल्की सी दरी और तकिया निकाल लिया। निरंजन के विरोध करते रहने पर भी दरी को फर्श पर बिछा कर वह लेट गई।

निरंजन पलंगपोश हटाये बिना ही पलंग पर लेट गया। नींद का कोसों पता न था। वह सोच रहा था, सुबह दिन निकले इस मकान से निकलेगा तो देखने वाले क्या कहेंगे ? मन को सांत्वना दी—लोग देखेंगे भी तो जान-पहचान के थोड़े ही होंगे ? दूसरा ख्याल आया, इस पलंग पर जाने कितने और कैसे-कैसे लोग लेटे होंगे ? घृणा मालूम हुई परन्तु अब घृणा मुनीर के प्रति नहीं उसके दुर्भाग्य के प्रति थी। उसने करवट ले ली।

"साहबज़ादे, नींद नहीं आ रही ?"—अलसाई हुई आवाज़ में मुनीर ने पूछा।

"अभी तो नहीं, कहिये ?"

"अंग्रेज की हुकूमत नहीं रहेगी तो क्या सब खुशहाल हो जायेंगे ? बेबस को गुज़र-बसर के लिये इज़्ज़त की रोज़ी का मौका हो जायगा ?"—उसने पूछा और स्वयं ही निराशा प्रकट की—"यह कैसे हो सकता है ? गरीब तो हमेशा ख़स्ता हाल ही रहेगा ? जो बेबस है, वह क्या कर सकता है ?"

निरंजन मुनीर की ओर करवट ले धीमे स्वर में समझाने लगा—"स्वराज से हमारा मतलब ही यह है कि पूरी रियाया, मर्द और औरत सभी को बाइज़्ज़त तरीक़े से मेहनत कर रोज़ी कमाने का मौका हो ! अंग्रेज ऐसा मौका नहीं देता क्योंकि उसकी हुकूमत ही गरीब की लूट पर कायम है। रियाया भूख से मजबूर न हो तो गैर कौम के हाथ अपनी आज़ादी और ईमान क्यों बेचें ? जब मुल्क में गरीब को दबाने का तरीका चालू है तो उसमें मर्द-औरत सब पिसते हैं।"—निरंजन मुनीर को स्वतंत्रता का महत्व समझाता रहा। मुनीर कुछ देर हुंकारा भरती रही। फिर नींद आ जाने पर बोली—"अब सो जाओ साहबज़ादे, अल्ला सलामत रखे !"—उसने करवट ले ली।

सुबह ग्यारह बारह बजे बाजार भर गया तभी मुनीर ने निरंजन को जाने की सलाह दी और कलेवा किये बिना न जाने दिया ।

× × ×

१६४८ के आखिरी दिन थे । निरंजन के मुनीर के यहाँ शरण पाने की घटना को छः बरस बीत चुके थे । मुनीर के यहाँ पुलिस के हाथ से बच कर भी आखिर निरंजन गिरफ्तार हो ही गया था । सन १६४७ में कांग्रेसी राज का स्वराज हुआ तो सभी राजनैतिक बन्दियों के साथ निरंजन भी जेल से छूट गया परन्तु कांग्रेसी राज्य में निरंजन और उसके जैसे लोगों के स्वप्न पूरे नहीं हुए । फिर वे लोग नये शासन में संगठित हो सार्वजनिक रूप से शासन के विरुद्ध असंतोष प्रकट कर व्यवस्था में परिवर्तन की मांग करने लगे । कोई भी सरकार अपने प्रति असंतोष का प्रचार और अपनी व्यवस्था पलट देने के प्रयत्नों को सह नहीं सकती । निरंजन जैसे लोगों को फिर खोज-खोज कर जेलों में भरा जाने लगा । पुलिस पहले अंग्रेज़ सरकार के हुक्म से लोगों को पकड़ती थी अब कांग्रेस सरकार के हुक्म से पकड़ कर जेलों में डालने लगी ।

निरंजन के दल के लोगों ने अपना आन्दोलन जनता में फैलाने के लिये लखनऊ में एक सम्मेलन करने की घोषणा की थी । सरकार ने उस पर कोई रोक थाम न लगाई । सम्मेलन के अवसर पर सब बागी लोगों के खिलाफ सामूहिक रूप से गिरफ्तारी के वारंट जारी कर दिये गये । पुलिस ने उन के ठहरने के स्थानों पर एक साथ छापे मार सभी लोगों को एक ही हल्ले में समेट लेना चाहा ।

अवसरवश निरंजन इस छापे में गिरफ्तार हो जाने से बच गया । जिस समय पुलिस ने उसके डेरे पर छापा मारा, वह कहीं बाहर गया हुआ था । उसे पुलिस के छापे का समाचार मिल गया और वह डेरे पर न लौटा परन्तु पुलिस से बचे रहना सहल न था । उसकी जानी-पहचानी सभी जगहों पर उसकी खोज हो रही थी । निरंजन घंटों घनी भीड़ और अंधेरी गलियों में घूमता रहा । रात बढ़ने के साथ भीड़ छटने लगी । अंधेरी गलियों में घूमते

रहना भी सन्देहजनक था। निरंजन को याद आई लखनऊ में छः वर्ष पहले की आशंकापूर्ण रात और मुनीर के यहां आश्रय पाने की बात। फिर वैसी ही लाचारी थी।

निरंजन चौक के बाज़ार में पहुँचा। गली पहचानी और जीना पहचाना। साढ़े दस का समय होगा। जीने के किवाड़ खुले थे। रोशनी के लिये ऊपर लालटैन जल रही थी। पिछले छः वर्ष में अनुभव के साथ निरंजन का साहस भी बढ़ चुका था फिर भी कुछ झिझक हुई पर वह जीना चढ़ गया। मुनीर सोफ़ा के समीप बैठी सोफ़ा पर पानदान रखे पान लगा रही थी। आहट पा उसने घूम कर देखा और अभ्यस्त मुस्कराहट से अभ्यागत का स्वागत किया—"आदावअर्ज़ करती हूँ। तशरीफ़ लाइये!"—और निरंजन को सोफ़ा पर बैठने का संकेत किया।

निरंजन ने आदावअर्ज़ का उत्तर दे सोफ़ा पर बैठ कर पूछा—"आपने पहचाना?"

"तशरीफ़ रखिये जनाब!"—मुनीर ने मुस्करा कर उत्तर दिया—"आप जैसे करमफ़रमा को बांदी नहीं पहचानेगी? वल्लाह क्या फ़रमाते हैं आप?

निरंजन मुनीर की ओर देखता रहा। सोफ़ा और मुनीर के चेहरे पर भी छः वर्ष का काफी प्रभाव दिखाई दे रहा था—"नहीं, अभी आपने पहचाना नहीं।···कोशिश कीजिये!"—निरंजन ने फिर आग्रह किया।

मुंह में भरे पान की पीक निगल मुनीर ने ध्यान से आगन्तुक को देखा, मस्तिष्क पर ज़ोर दिया। उसके होंठ खुल गये–"ओह! अब पहचाना!···बाख़ुदा! साहबज़ादे, मुद्दतों में दिखाई दिये! ज़माना बदल गया। अब तो आप लोगों का राज है। आप लोगों की सरकार है। हम ग़रीब-ग़ुरबा तो जैसे तब थे, वैसे अब। जंग की तंगी के ज़माने में भी रुपये का चार सेर का आटा खाते रहे। अब सवा दो सेर का खाते हैं! अल्ला सलामत रखे! कनीज़ को याद तो किया।···कैसे आये?"

"वैसे ही, जैसे तब आया था!"—निरंजन ने स्वर धीमा कर उत्तर दिया।

"यानी"—ठोड़ी पर उंगली रख मुनीर ने पूछा—"क्या कह रहे हो ?......तब तो पुलिस से भाग कर आये थे !"

"आज भी वैसे ही आया हूँ ।"

"अल्ला की रहमत क्या कह रहे हो ? अंग्रेज़ तो गये । अब तो अपने काले आदमियों का राज है । तुम और क्या चाहते हो ?"—मुनीर विस्मित थी ।

"काले आदमियों का राज क्या है, काले दिलों का राज है बहन ! अंग्रेज़ तो चले गये पर हुआ कुछ भी नहीं । स्वराज होता तो तुम यहां इसी तरह बैठी होतीं ?"—निरंजन ने पूछा ।

"तो अब तुम और क्या चाहते हो ?"

"हम चाहते हैं सब लोगों के लिये बाइज़्ज़त रोज़ी कमाने के लिये बराबर मौका । सब लोग मेहनत करने का मौका पायें और अपनी इज़्ज़त की कमाई खायें । पेट भरने के लिये किसी को अपना जिस्म बेचना न पड़े । मेहनत करने वालों का पंचायती राज हो !"—निरंजन ने आग्रह के स्वर में मांग की ।

"हाय तो इस में बुरा क्या है ?"—मुनीर ने विस्मय प्रकट किया—"अब तो अपने लोगों की सरकार है । ऐसा तो होना ही चाहिये । ऐसी बातों से सरकार को क्या एतराज़ ? यह सरकार तो उन नासपीटे कम्युनिस्टों को जेल में डालती है जो चुप रेलें गिरा कर लोगों की जान लेते हैं और कहते हैं, सब कुछ लूट लो !"

"नहीं नहीं"—सिर हिला कर निरंजन ने विरोध किया—"कम्युनिस्ट ऐसा नहीं कहते ! वे तो वही कहते हैं जो मैं कह रहा हूं ! तभी कांग्रेसी पुलिस मुझे गिरफ्तार करना चाहती है ।"

"हाय अल्ला, सच ?"—मुनीर हैरान थी—"साहबज़ादे, तुम तो इसी सुराज के लिये जान दे रहे थे......!"

लेखक की रचनाओं के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख सम्मतियाँ—

× × ×

कहानी संग्रहों के विषय में :—

नेशनल हैरल्ड, जून १६४०

"यह कहानियाँ संसार की किसी भी भाषा की श्रेष्ठ कहानियों के संग्रह में ऊँचा स्थान पाने योग्य हैं ।"

कविवर मैथिलीशरण गुप्त

"विधाता ने लेखक को मुक्तहस्त होकर प्रतिभा और शक्ति दी है···हिन्दी कथा साहित्य अभी तक लेता ही रहा, राम कृपा से अब वह देने योग्य भी हो गया है। यह शक्ति हिंदी को ऐसी ही रचनाओं से मिल रही है······।"

उपन्यास के विषय में :—

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

"यशपाल की परतूलिका स्थायी मूल्य की चीज़ों के लिए है··· 'देशद्रोही' संसार की उन्नत भाषाओं के उपन्यासों की तुलना में रखी जा सकती है

आजकल' दिसम्बर १६४६ :—

'मनुष्य के रूप'—"उपन्यास वास्तविकता, कल्पना और उद्देश्यपरकता का अपूर्व मिलान है"

हिन्दुस्तान—नयी दिल्ली (जून १६४६)

"मतविरोध होने पर भी लेखक की कला का लोहा मानना ही पड़ता है·········।"

राजनैतिक निबन्धों के विषय में :—

आचार्य नरेन्द्रदेव, वाइस चांसलर, बनारस विश्वविद्यालय

"इन लेखों को पढ़कर आपके होठों पर जो मुस्कराहट आयेगी वह आत्मविस्मृति और आनन्दोल्लास की न होकर क्षोभ, परिताप और क्र[illegible]की होगी······। लेखक आत्मविस्मृत समाज को कलम की नोक से गुदगुदा कर जगाने की चेष्टा करता है और समाज को जागते न देख कभी कलम की नोक समाज के शरीर में गड़ा भी देता है।

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

'गांधीवाद की शव परीक्षा'—इस वर्ष की सर्वोत्तम और सर्वोपयोगी पुस्तक है···'